स्वदेशी पत्रिका

वर्ष–20, अंक–7, आषाढ़–श्रावण 2069, जुलाई 2012

संपादक
विक्रम उपाध्याय

कार्यालय
धर्मक्षेत्र, सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग
रामकृष्णपुरम्, नयी
दिल्ली–110022
से प्रकाशित
दूरभाष : 011–26184595
स्वदेशी जागरण समिति की ओर से ईश्वर दास महाजन द्वारा कॉम्पीटेंट बाइन्डर्स (प्रिंटिंग यूनिट), नवीन शाहदरा, दिल्ली–32 से मुद्रित।

आवरण कथा–4

ऐसा माना जाता है कि देश में हर वर्ष बल्ड कैंसर के 20 हजार नये मरीज बनते हैं। नॉवरेतिस कंपनी अपनी बनाई गई इस दवा के लिए लगभग 1 लाख 20 हजार रूपये प्रतिमाह वसूलती है. . .

कवर पेज

अनुक्रम

आवरण लेख
जन स्वास्थ्य पर मंडराते खतरे
– स्वदेशी संवाद /4

कृषि
नीति–नियंताओं की नाकामी
– देविन्दर शर्मा /6

चिंतन
कैसे दूर हो किसानों के संकट
– भारत डोगरा /8

अर्थव्यवस्था
टुकड़ा–टुकड़ा नाकाम कोशिशें
– आलोक पुराणिक /10

दृष्टिकोण
मझधार में अर्थव्यवस्था की नाव
– डॉ. अश्विनी महाजन /13

विश्लेषण
नहीं चलेगा – ग्रीस संकट का बहाना
– अवधेश कुमार /15

अंतर्राष्ट्रीय
यूरोप की बेजा मदद – डॉ. भरत झुनझुनवाला /18

अर्थ–तंत्र
निर्यात का सिलसिला थमा क्यों
– जयंतीलाल भंडारी /20

सामयिकी
विज्ञान में क्यों पिछड़ा भारत
– निरंकार सिंह /22

पर्यावरण
ऐसा भविष्य जो हम नहीं चाहते
– वंदना शिवा /25

लेख : परीक्षित कथा की प्रासंगिकता
– डॉ. ब्रह्मा भारद्वाज /27

गंगा अभियान
कांवड़ियों ने ठानी है – गंगा मैया बचानी है
– राजेन्द्र सिंह /29

समीक्षा
भू–राजनीतिक संतुलन के लिए सशक्त प्रयत्नों की आवश्यकता
– डॉ. भगवती प्रकाश शर्मा /32

पाठकनामा/2, रपट 34

पाठकनामा

पानी की बढ़ती समस्या

गर्मी के मौसम में ही लोगों को पानी की समस्या याद आती है। जैसी ही गर्मी बीत जाती है, लोग पानी की समस्या भूल जाते हैं – खासतौर से शहरी वर्ग। आज दिल्ली, मुंबई, कलकत्ता में पानी की काफी जटिल समस्या है। इस समस्या में अपनी टीआरपी में बढ़ोतरी करने के लिए टीवी चैनल वाले भी इस समस्या को दिखाते रहते हैं। लेकिन क्या कभी किसी टीवी चैनल ने इस समस्या को गंभीर रूप से लिया है। मेरे हिसाब से तो बिल्कुल ही नहीं।

आज हमने बावड़ियों, तालाबों और पोखरों की जगह मकान, दुकान बना लीं है जिसके कारण भी हमारे सामने पानी का संकट दिन प्रति दिन आ रहा है। बढ़ते औद्योगिकीकरण, बेतहाशा आबादी और विकास की आपाधापी में शहरों के सामने यह समस्या और बढ़ गई है। आज वर्षा जल का सही संचयन करना और उसका वैज्ञानिक प्रबंधन व समुचित वितरण हो तो जल संकट को टाला जा सकता है। इसके अलावा भ्रष्ट अफसर और भ्रष्ट कर्मचारी द्वारा रिश्वत लेकर खेती युक्त जमीन पर मकान बनाने का बढ़ावा दे रहे हैं। जिसके कारण भी भूजल दिन प्रति दिन नीचे गिरता जा रहा है। अतः सरकार को खेतीयुक्त जमीनों पर मकान न बनाने का फरमान जारी कर देना चाहिए। अगर आज बढ़ती आबादी, बढ़ते मकान, बढ़ते औद्योगिकीकरण पर रोक नहीं लगाई तो एक दिन शहर में पानी के लिए भी भयंकर लड़ाई हो सकती है। जरूरी है शहरों के गांवों को बचाया जाए और अधिक से अधिक वृक्षारोपण अभियान चलाए जाए। हम यह न भूलें कि वृक्ष से जल, जल से अन्न और अन्न से जीवन मिलता है और बारिश के मौसम में अधिक से अधिक जल संचयन करने की विधि का अपनाए।

– ज्योति राय (अध्यापिका), द्वारका, दिल्ली

प्रदूषण में दिल्ली अव्वल

मैं स्वदेशी पत्रिका में नियमित रूप से पढ़ता रहता हूँ। अभी हाल ही में मैं अखबार में पढ़ा कि देश के सभी महानगरों के मुकाबले दिल्ली की हवा में सबसे ज्यादा प्रदूषण है। जबकि मुंबई में दिल्ली से कम प्रदूषण है। अमरीका की स्पेस एजेंसी नासा और आईआईटी दिल्ली के एक संयुक्त अध्ययन से इसका खुलासा हुआ है। दिल्ली में पिछले दस वर्षों में 31.1 माइक्रोग्राम प्रति मीटर क्यूबिक प्रदूषण बढ़ा है। अध्ययन के अनुसार यह स्तर दुनिया के किसी भी शहर में प्रदूषण का अधिकतम सीमा है। पर्यावरण से संबंधित लेख स्वदेशी पत्रिका के अलावा हर सामाजिक संस्थान अपनी पत्रिका में निकालती रहती है फिर भी लोग जागरूक नहीं हो रहे। क्या इसमें सरकार का दोष है या आम आदमी का? इसमें सरकार और दिल्ली वासियों को अब सोचना होगा। कहावत है – सांस है तो आशा है, सांस नहीं तो कुछ नहीं।

– ओम प्रकाश कुलियाल, सेक्टर–3, आर.के.पुरम, दिल्ली

आवश्यक नहीं कि इस अंक के भीतर प्रस्तुत लेखकों के विचार स्वदेशी पत्रिका के संपादक मंडल के विचारों से मेल खाते हों। पाठकों की जानकारी के लिए उन्हें यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

संपादकीय कार्यालय

''धर्मक्षेत्र'' शिव शक्ति मन्दिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

दूरभाष : 011–26184595 • ई–मेल : swadeshipatrika@rediffmail.com

अगर आप घर बैठे स्वदेशी पत्रिका चाहते हैं तो डिमांड ड्राफ्ट, मनीऑर्डर अथवा चेक द्वारा शुल्क *'स्वदेशी पत्रिका'* दिल्ली के नाम भेजने का कष्ट करें।

वार्षिक सदस्यता शुल्क : 100 रुपए
आजीवन सदस्यता शुल्क: 1,000 रुपए

यदि शुल्क भेजने के उपरांत भी आपको पत्रिका समय पर उपलब्ध नहीं हो पा रही है तो तुरंत पत्रिका कार्यालय को सूचित करें।

(ध्यानार्थ : कृपया अपना नाम व पता साफ अक्षरों में लिखें)

उन्होंने कहा

मेरी पहले भी यही राय थी, अब भी यही राय है और भविष्य में भी यही राय रहेगी–मृत्यु तक। मैं किसी विदेशी को प्रधानमंत्री या राष्ट्रपति बनाए जाने का समर्थन नहीं करूंगा।

–पीए संगमा

देश के सभी राज्यों में शराब ने हजारों–लाखों परिवारों को बर्बाद कर दिया है। यह एक रोग है, जिससे संक्रमित तो आम तौर पर परिवार का एक ही सदस्य होता है, किंतु गाज पूरे परिवार पर गिरती है।

– अमीर खान

जुंदाल की गिरफ्तारी से जहां पाकिस्तान एक बार फिर बेनकाब हुआ है वहीं भारत के सेक्युलरिस्टों का सच भी सामने आया है।

– बलवीर पुंज

सरकार हर चीज को मिडिल क्लास के नजरिए से नहीं देख सकती। आखिर क्यों लोग चावल पर एक रुपये का ज्यादा खर्च बर्दाश्त नहीं कर सकते, लेकिन आइसक्रीम पर 15 रुपये खर्च कर देते हैं।

– पी चिदंबरम

विदेशी चश्मे से चिदंबरम को देश के गरीब और आम आदमी की पीड़ा दिखाई नहीं देती है। आम आदमी का मजाक उड़ाने के लिए चिदंबरम को देश से माफी मांगनी चाहिए।

– शाहनवाज हुसैन

बाल श्रम की समस्या को समाप्त करना है तो देश के ग्रामीण क्षेत्रों में रह रहे गरीबों की सुध लें केन्द्र सरकार और राज्य सरकार।

– जस्टिस सुरेश कैट, हाईकोर्ट

संपादकीय

अंडर ऐचिवर प्रधानमंत्री और यूपीए सरकार

जून माह में अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका 'द इकोनॉमिस्ट' ने प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के बारे में कुछ टिप्पणी की थी। अब जुलाई में 'टाईम' पत्रिका ने अपनी हाल ही की टिप्पणी में कहा है कि प्रधानमंत्री 'अंडर ऐचिवर' यानि उम्मीद से कम साबित हुए हैं। यूं तो डॉ. मनमोहन सिंह की अर्थशास्त्री और आर्थिक नीति–निर्माता के नाते खासी प्रसिद्धि है, लेकिन हाल ही के घटनाक्रमों ने देश के सामने आर्थिक हालातों के मद्देनजर प्रधानमंत्री की क्षमताओं पर एक प्रश्न चिन्ह लगा दिया है। 'टाईम' पत्रिका का कहना है कि प्रधानमंत्री में आगे बढ़कर देश को पुनः आर्थिक संवृद्धि के रास्ते पर लाने के प्रति इच्छा शक्ति नहीं है। आर्थिक संवृद्धि में धीमापन, भारी भरकम राजकोषीय घाटा और गिरते रूपये जैसी भयंकर चुनौतियों के समक्ष यूपीए की गठबंधन सरकार आर्थिक दिशा हीनता का प्रदर्शन कर रही है। घरेलू हो या विदेशी, निवेशक ठंडे पड़ गये हैं। पिछले 3 वर्षों के अपनी द्वितीय पारी में प्रधानमंत्री का आत्म–विश्वास डगमगाता हुआ दिखाई दे रहा है और उनका अपने मंत्रियों पर भी कोई नियंत्रण नहीं रहा। 'टाईम' पत्रिका का यह भी कहना है कि लोक लुभावन कार्यक्रमों में उलझी यह सरकार दिशा भटक चुकी है।

हालांकि विदेशी पत्रिकाएं सरकार की अक्षमता इस बात से मानती हैं कि वे लंबित विधेयकों को पारित नहीं करवा पा रही या खुदरा क्षेत्र में विदेशी निवेश को नहीं खोल पा रही। उनका कहना है कि ऐसा नहीं होने के कारण आर्थिक धीमापन आ रहा है। लेकिन वास्तव में आर्थिक धीमेपन का कारण अकुशल प्रबंधन और गलत आर्थिक नीतियां हैं।

प्रधानमंत्री स्वयं भी यह मानते हैं कि अर्थव्यवस्था की सेहत बिगड़ रही है। केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन द्वारा हाल ही में प्रकाशित आंकड़ों के अनुसार वर्ष 2011–12 में जीडीपी की संवृद्धि दर मात्र 6.5 प्रतिशत ही रह गई है। गौरतलब है कि जीडीपी की संवृद्धि दर इससे पिछले 2 वर्षों में 8.4 प्रतिशत रही थी। यदि औद्योगिक उत्पादन की बात करें तो इस वर्ष औद्योगिक उत्पादन की संवृद्धि दर घट कर मात्र 2.9 प्रतिशत ही रह गई है। हाल ही की तिमाहियों में तो यह ऋणात्मक तक पहुंच गई थी। राजकोषीय घाटा जीडीपी के 6 प्रतिशत तक पहुंच रहा है। पिछले 4–5 महिनों में रूपये में लगभग 20 प्रतिशत की गिरावट दर्ज की गई है। खाद्यान्नों एवं अन्य खाद्य पदार्थों के संतोषजनक उत्पादन के कारण खाद्य मुद्रा स्फीति थमने के बावजूद, अन्य पदार्थों की कीमतें थमने का नाम नहीं ले रही। रूपये की गिरावट और कच्चे तेल की कीमतों की वृद्धि से जनित मुद्रा स्फीति ने आम आदमी का जीना मुहाल कर दिया है।

प्रधानमंत्री हो या अन्य नीति–निर्माता लगातार विकास का सारा दारोमदार जीडीपी ग्रोथ पर मानते हैं। उनका मानना है कि यदि जीडीपी 9 प्रतिशत तक बढ़ जाए तो देश की सारी समस्याओं का समाधान हो जाएगा। इसलिए जीडीपी को विकास का पैमाना मान लिया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय पत्रिका 'द इकॉनोमिस्ट' लिखती है कि ऐसा लगता है कि भारत की ग्रोथ की कहानी का अंत होने जा रहा है। गौरतलब है कि दुनिया के अर्थशास्त्री भारत की नीची विकास दर को अपमानबोधक हिन्दू रेट ऑफ ग्रोथ का नाम दिया करते थे। दुनिया में देश की आर्थिक ताकत का डंका बजाने के लिए जरूरी है कि हमारे नीति निर्माता विकास के पैमाने को सही करें। केवल जीडीपी ग्रोथ नहीं सभी क्षेत्रों में एक सा विकास, खाद्य सुरक्षा, गरीबी और बेरोजगारी का निराकरण की हमारे विकास को स्थाई बना सकते हैं।

हमारे रूपये की दुर्गति आर्थिक कुप्रबंधन का जीता जागता उदाहरण है। पिछले कुछ समय से भारतीय रूपया विदेशी मुद्राओं की तुलना में लगातार कमजोर होता जा रहा है। फरवरी 2012 यानि मात्र 4–5 माह पहले रूपये की डॉलर में विनिमय दर 48.7 रूपये प्रति डॉलर थी, हाल ही में 57–58 रूपये प्रति डॉलर के आस–पास हो गयी। माना जाता है कि बढ़ता व्यापार घाटा इसका कारण है और बढ़ते व्यापार घाटे के लिए जिम्मेवार है, बढ़ता सोने–चांदी का आयात, बढ़ती अंतर्राष्ट्रीय तेल कीमतें और चीन से लगातार बढ़ता आयात। इसके अलावा रूपये की कमजोरी के लिए विदेशी संस्थागत निवेशकों द्वारा बड़े पैमाने पर विदेशी मुद्रा का अंतरण भी काफी हद तक जिम्मेदार है।

अर्थव्यवस्था की इन तमाम बदहालियों के बावजूद सरकार नीतिगत विकल्प सुझाने में पूर्णतया असफल दिखाई दे रही है। यही नहीं सरकार उपलब्ध विकल्पों का भी सही मायनों में उपयोग नहीं कर रही। आर्थिक संवृद्धि की दर घटने में एक बड़ा कारण फैक्ट्री उत्पादन में धीमापन है और यह मुख्यतः दो कारणों से है– एक, कच्चे माल और ईंधन की कीमतों में वृद्धि और दूसरा, ब्याज दरों में लगातार वृद्धि। कच्चे माल और ईंधन की कीमतों में वृद्धि रूपये की कमजोरी के कारण ज्यादा हुई है और इसके लिए जरूरी है कि रूपये को मजबूत बनाया जाए। ब्याज दरों में वृद्धि मुद्रा स्फीति के कारण है और इसके लिए जरूरी है मुद्रा स्फीति पर काबू किया जाए। ब्याज दरों में कमी करते हुए ही हम फैक्ट्री उत्पादन, इन्फ्रास्ट्रक्चर निवेश और अर्थव्यवस्था के अन्य क्षेत्रों में निवेश को प्रोत्साहित करते हुए अर्थव्यवस्था को बचा सकते हैं।

जन स्वास्थ्य पर मंडराते खतरे

सरकार जन स्वास्थ्य पर मंडराते खतरों के मद्देनजर नॉवरेतिस कम्पनी द्वारा सुप्रीम कोर्ट में किए गए मुकद्दमें की पैरवी हेतु देश के एटॉरनी जनरल को भेंजे ताकि मुकद्दमें की प्रभावी पैरवी हो सके। साथ ही भारतीय दवा कम्पनियों के विदेशी कंपनियों द्वारा अधिग्रहण पर तुरंत प्रभावी रोक लगाई जाए। जाहिर है कि जन स्वास्थ्य की रक्षा के लिए जरूरी है कि सरकार विदेशी निवेश का लोभ त्यागते हुए एक प्रबल राजनीतिक इच्छा प्रकट करें और नॉवरेतिस सहित बहुराष्ट्रीय दवा कंपनियों के मंसूबों को पूरा न होने दें।

स्विटरजरलैंड की एक दवा कंपनी नॉवरेतिस और भारत सरकार के बीच सुप्रीम कोर्ट में एक मुकद्दमा चल रहा है। गौरतलब है कि भारत सरकार ने नॉवरेतिस कंपनी की एक दवा 'ग्लीवैक' (लवण नाम इमेटीनिब) के लिए पेटेंट प्रदान करने से मना कर दिया है।

नॉवरेतिस कंपनी ने पहली बार वर्ष 2006 में भारत सरकार के खिलाफ इस संबंध में मद्रास हाई कोर्ट में मुकद्दमा दायर किया था, जिसमें यह कंपनी हार गई थी। अब यह मुकद्दमा सुप्रीम कोर्ट में लंबित है, जिसकी सुनवाई 10 जुलाई 2012 से प्रारंभ हो रही है। भारत सरकार के पेटेंट विभाग ने इस दवा के लिए पेटेंट देने से इस कारण से इंकार कर दिया था कि इस दवा को बनाने में कंपनी ने कोई नया तत्व इजाद नहीं किया और पहले से बनी दवा के कुछ अन्य गुणों के बारे में बताया है।

भारत के पेटेंट कानून के प्रावधान 3–डी के अनुसार पुरानी दवा में मात्र कुछ हल्के बदलाव करके कोई कंपनी नया पेटेंट प्राप्त नहीं कर सकती। इसलिए भारत सरकार ने इस दवा के लिए पेटेंट प्रदान न करके कोई गलती नहीं की है। मद्रास हाई कोर्ट ने इस मुकद्दमें में यह फैसला दिया कि कंपनी को इस दवा पर पेटेंट नहीं देना सही है।

देश की आजादी के बाद सभी संबंद्ध

■ स्वदेशी संवाद

पक्षों से विचार विमर्श और देशव्यापी चर्चाओं के आधार पर एक पेटेंट कानून बनाया गया, जो था भारतीय पेटेंट अधिनियम, 1970।

गौरतलब है कि इस पेटेंट कानून के आधार पर देश में दवा उद्योग का विकास बहुत तेजी से हुआ। अनिवार्य लाइसेंसिंग

ऐसा माना जाता है कि देश में हर वर्ष बल्ड कैंसर के 20 हजार नये मरीज बनते हैं। नॉवरेतिस कंपनी अपनी बनाई गई इस दवा के लिए लगभग 1 लाख 20 हजार रूपये प्रतिमाह वसूलती है। जबकि यही दवा भारतीय कंपनियों द्वारा मात्र 10 हजार रूपये प्रतिमाह की कीमत पर बेची जाती है। यदि इस दवा के उत्पादन पर किसी एक कंपनी का एकाधिकार हो जायेगा तो गरीब मरीजों द्वारा दवा नहीं खरीद सकने के कारण उन्हें मौत की नींद सोना पड़ सकता है।

और प्रोसेस पेटेंट व्यवस्था और पेटेंट की लघु अवधि, इस पेटेंट कानून की कुछ खास बातें थी। देश में दवा उद्योग का इस कदर विकास हुआ कि भारत दवाओं के क्षेत्र में दुनिया का सिरमौर देश बन गया। भारत इस बात पर गर्व करता है कि भारत में एलोपैथिक दवाईयां दुनिया में सबसे सस्ती है। भारत का दवा उद्योग केवल देश के लोगों के लिए ही दवा उपलब्ध नहीं कराता बल्कि दुनिया के अधिकतम विकासशील देश भी अपनी दवा की आवश्यकताओं के लिए भारत पर निर्भर करते है।

भारत दुनिया का मूल्य की दृष्टि से चौथा और मात्रा की दृष्टि से तीसरा सबसे बड़ा दवा उत्पादक देश है। आज भारत 200 से अधिक देशों को दवा निर्यात करता है और वैश्विक स्तर की सस्ती जैनरिक दवायें दुनिया को भेजता है।

भारत द्वारा विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यू.टी.ओ.) के समझौतों पर हस्ताक्षर करने के बाद, उसकी शर्तों के अनुसार देश के पेटेंट कानून में 1 जनवरी 2005 से संशोधन किये गये। उसके बाद देश का पेटेंट कानून काफी हद तक बदल गया।

प्रक्रिया (प्रोसेस) पेटेंट के बजाय अब उत्पाद (प्रोडक्ट) पेटेंट व्यवस्था लागू कर दी गई, सरकार द्वारा अनिवार्य लाइसेंस दिये जाने के अधिकार पर अंकुश लगा दिया गया और पेटेंट की अवधि को बढ़ा

दिया गया। देश के जन स्वास्थ्य पर संभावित खतरों के मद्देनजर, सरकार द्वारा पेटेंट व्यवस्था को बदलने के विरोध में जन आन्दोलनों और विशेषज्ञों के भारी विरोध के कारण पेटेंट कानून में किये जा रहे कई संशोधनों को सरकार को वापिस लेना पड़ा। सरकार को नए संशोधनों के लागू होने से पहले पेटेंटयुक्त दवाओं के उत्पादन के लिए पूर्व में दिये गये लाइसेंसों को जारी रखना पड़ा और ऐसे प्रावधान बनाए गए, जिससे अंतर्राष्ट्रीय दवा कंपनियां पहले से बनी दवा के कुछ अन्य गुणों के बारे में बता कर नये पेटेंट न ले सके। इसका अभिप्राय यह है कि दवाओं के पेटेंट को कंपनियां सदाबहार (एवरग्रीन) नहीं कर सकती।

नॉवरेतिस बनाम भारत सरकार मुकदमे के मायने

भारत में कई अन्य कंपनियां 'इमेटीनिगब' नामक इस दवा को बनाती हैं। यह दवा बल्ड कैंसर के मरीजों के लिए अत्यधिक कारगर दवा है। ऐसा माना जाता है कि देश में हर वर्ष बल्ड कैंसर के 20 हजार नये मरीज बनते हैं। नॉवरेतिस कंपनी अपनी बनाई गई इस दवा के लिए लगभग 1 लाख 20 हजार रूपये प्रतिमाह वसूलती है। जबकि यही दवा भारतीय कंपनियों द्वारा मात्र 10 हजार रूपये प्रतिमाह की कीमत पर बेची जाती है। यदि इस दवा के उत्पादन पर किसी एक कंपनी का एकाधिकार हो जायेगा तो गरीब मरीजों द्वारा दवा नहीं खरीद सकने के कारण उन्हें मौत की नींद सोना पड़ सकता है।

यह मुकदमा मात्र 'ग्लीवैक'/ 'इमैटिनिब' के पेटेंट अधिकार का नहीं है। इस मुकदमें पर दुनिया भर की निगाहें लगी हुई हैं। यदि नॉवरेतीस कंपनी भारत सरकार से यह मुकदमा जीत जाती है तो नॉवरेतीस ही नहीं बल्कि सभी भारतीय और विदेशी कंपनियों के पास यह अधिकार आ जायेगा कि अपने पुरानी दवाओं के नये गुणों के नाम पर उसे नई दवा के नाते पेटेंटयुक्त करा लें। इसके चलते पहले से उस दवा को बनाने वाली अन्य कंपनियां उस दवा को बनाने के लिए अयोग्य घोषित हो जायेंगी और इस प्रकार से उन तमाम दवाओं पर पेटेंट प्राप्त करने वाली उन कंपनियों का एकाधिकार हो जायेगा।

आज भारत दुनिया को सस्ती जैनरिक दवाईयां बनाकर बेच रहा है और दुनिया भर के लगभग 200 देश भारत से दवाएं आयात करके अपने जन स्वास्थ्य की रक्षा कर रहे हैं। कंपनियों के लाभों के सामने दुनिया भर के गरीब मरीजों के लिए अपने स्वास्थ्य की रक्षा के रास्ते बंद हो सकते हैं।

यही कारण है कि आजकल नॉवरेतीस के इस मुकदमें के खिलाफ दुनिया भर में एक मुहिम छिड़ी हुई है और स्थान–स्थान पर कैपचर नॉवरेतीस के नाम पर चल रहे इस आंदोलन के तहत नॉवरेतीस के कार्यालयों पर प्रदर्शनकारी अपना कब्जा जमा रहे हैं। दुनिया भर के जन स्वास्थ्य की रक्षा हेतु बने संगठन इस मुकदमें के मद्देनजर भारत सरकार पर नॉवरेतीस के सामने न झुकने के लिए दबाव बना रहे हैं। इन संगठनों ने यह भी मांग की है कि किसी भी हालत में इस मुकदमें को हल्के से न लिया जाएं। 10 जुलाई 2012 को साऊथ अफ्रीका के केपटाऊन सहित दुनिया के कई हिस्सों में नॉवरेतिस कंपनी के खिलाफ बड़ी संख्या में प्रदर्शन हुए।

जन स्वास्थ खतरे में

पिछले कुछ समय से भारत में विदेशी निवेश को बढ़ावा देने के नाम पर किसी भी प्रकार के विदेशी निवेश का स्वागत करने का कुछ रिवाज सा बन गया है, फिर चाहे वो देश के लोगों के स्वास्थ्य की कीमत पर भी क्यों न हो? पिछले एक दशक में लगभग 9 अरब डॉलर का विदेशी निवेश दवा उद्योग में प्राप्त हुआ, जिसमें से 4.73 अरब डॉलर स्थापित दवा कंपनियों को अधिग्रहित करने के लिए आये। इसको व्यवसायिक भाषा में ब्राउन फील्ड निवेश कहा जाता है।

वर्तमान नियमों के अनुसार दवा उद्योग में नये निवेश और स्थापित भारतीय कंपनियों के अधिग्रहण दोनों में 100 प्रतिशत निवेश बिना किसी अनुमति के बेरोकटोक आने का प्रावधान है। इस बात का लाभ उठाते हुए बड़ी विदेशी बहुराष्ट्रीय दवा कंपनियां भारतीय कंपनियों की सस्ते दामों पर दवा बनाने की क्षमता से लालायित होकर इन कंपनियों को ही खरीदती जा रही हैं। 1998–99 में जहां दस बड़ी दवा कंपनियों में से एक (ग्लैक्सो स्मिथ क्लाइन) विदेशी थी, आज उनकी संख्या बढ़कर तीन हो गई है (रैनबैक्सी, ग्लैक्सो और पीरामल)।

जरूरी है कि सरकार जन स्वास्थ्य पर मंडराते इन खतरों के मद्देनजर नॉवरेतिस कम्पनी द्वारा सुप्रीम कोर्ट में किए गए मुकद्दमें की पैरवी हेतु देश के एटॉरनी जनरल को भेंजे ताकि मुकद्दमें की प्रभावी पैरवी हो सके। साथ ही भारतीय दवा कम्पनियों के विदेशी कंपनियों द्वारा अधिग्रहण पर तुरंत प्रभावी रोक लगाई जाए। जाहिर है कि जन स्वास्थ्य की रक्षा के लिए जरूरी है कि सरकार विदेशी निवेश का लोभ त्यागते हुए एक प्रबल राजनीतिक इच्छा प्रकट करें और नॉवरेतिस सहित बहुराष्ट्रीय दवा कंपनियों के मंसूबों को पूरा न होने दें। ❑

नीति-नियंताओं की नाकामी

खाद्यान्न के बढ़ते दाम गरीबों की ही नहीं, मध्यम वर्ग की भी कमर तोड़ देंगे। जिस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा वह यह है कि खाद्य सुरक्षा के साथ किसी भी कीमत पर समझौता नहीं किया जा सकता। गरीबों का पेट भरना राष्ट्रीय जिम्मेदारी है और अब भारी अतिरिक्त खाद्यान्न को देखते हुए इससे मुंह चुराने का हमारे पास कोई बहाना नहीं बचा है।

■ **देविन्दर शर्मा**

इस साल पहली जून तक भारत में 842 लाख टन अतिरिक्त खाद्यान्न जमा था। यह इतनी भारी मात्रा है कि अगर एक के ऊपर एक बोरियां लगा दी जाएं तो आप इनसे होकर चांद तक पहुंच जाएंगे। इसके बाद भी 220 लाख टन खाद्यान्न बचा रह जाएगा।

तस्वीर का दूसरा पहलू देखिए। भारत में हर रोज 32 करोड़ लोग भूखे सोते हैं और 47 फीसदी बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। इस साल खाद्यान्न की बंपर पैदावार से भारत के पास देशवासियों का पेट भरने का ऐतिहासिक अवसर है। इस अतिरिक्त खाद्यान्न को जरूरतमंदों और भुखमरी के शिकार लोगों के घरों तक पहुंचाने के कार्यक्रम के जरिये हम न केवल भारत से भुखमरी का खात्मा कर देंगे, बल्कि विश्व में भुखमरी के शिकार लोगों की संख्या भी एक–तिहाई कम कर देंगे।

आखिरकार, भारत में विश्व के कुल भूखे लोगों की एक–तिहाई आबादी रहती है। वर्ल्ड हंगर रिपोर्ट के अनुसार भारत 81 देशों की सूची में 67वें स्थान पर है। जहां तक भूख से जंग की बात है तो रवांडा भी भारत से आगे है। एक ऐसे समय भारत के पास खाद्यान्न का विशाल भंडार है और वह यूरोप के बचाव के लिए 57000 करोड़ रुपये की सहायता दे सकता है, तब इसका कोई कारण नजर नहीं आता कि भूख के खिलाफ लड़ाई नहीं लड़ी जा सकती।

इस साल पहली जून तक भारत में 842 लाख टन अतिरिक्त खाद्यान्न जमा था। यह इतनी भारी मात्रा है कि अगर एक के ऊपर एक बोरियां लगा दी जाएं तो आप इनसे होकर चांद तक पहुंच जाएंगे। इसके बाद भी 220 लाख टन खाद्यान्न बचा रह जाएगा। तस्वीर का दूसरा पहलू देखिए। भारत में हर रोज 32 करोड़ लोग भूखे सोते हैं और 47 फीसदी बच्चे कुपोषण के शिकार हैं। इस साल खाद्यान्न की बंपर पैदावार से भारत के पास देशवासियों का पेट भरने का ऐतिहासिक अवसर है।

मेरी समझ से भारत में खाद्यान्न का जितना भंडार है, उससे प्रत्येक भारतीय को 2200 कैलोरी प्रतिदिन मिल सकती हैं। दूसरे शब्दों में इतने खाद्यान्न से हर भारतीय का पेट भरा जा सकता है। भारतीयों का पेट भरने के बजाय खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्री केवी थॉमस इस खाद्यान्न से छुटकारा पाने के उपाय तलाश रहे हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली में 50 लाख टन खाद्यान्न आवंटित करने के बाद अब वह गेहूं के निर्यात की संभावना तलाश रहे हैं और वह भी घाटे पर। 778 रुपये प्रति क्विंटल के घाटे पर खाद्य और उपभोक्ता मामलों के

भारत में खाद्यान्न का जितना भंडार है, उससे प्रत्येक भारतीय को 2200 कैलोरी प्रतिदिन मिल सकती हैं। दूसरे शब्दों में इतने खाद्यान्न से हर भारतीय का पेट भरा जा सकता है। भारतीयों का पेट भरने के बजाय खाद्य और सार्वजनिक वितरण मंत्री केवी थॉमस इस खाद्यान्न से छुटकारा पाने के उपाय तलाश रहे हैं। सार्वजनिक वितरण प्रणाली में 50 लाख टन खाद्यान्न आवंटित करने के बाद अब वह गेहूं के निर्यात की संभावना तलाश रहे हैं और वह भी घाटे पर।

मंत्री 20 लाख टन गेहूं ईरान को निर्यात करने जा रहे हैं। निर्यात की दर किसानों को दिए गए न्यूनतम समर्थन मूल्य से भी कम रखी गई है। यहां तक कि गरीबी रेखा के नीचे रहने वालों को जिस दर पर गेहूं बेचा जाता है, यह दर उससे भी कम है। वह और भी गेहूं निर्यात करते, किंतु मंत्रालय के दुर्भाग्य से फिलहाल गेहूं की अंतरराष्ट्रीय मांग ही नहीं है। भंडारण की अपनी अक्षमता को जाहिर करते हुए थॉमस पहले ही घोषणा कर चुके हैं कि 66 लाख टन गेहूं के लिए कोई सही भंडारण क्षमता नहीं है, इसलिए वह खुले में पड़ा हुआ है और बारिश में सड़ रहा है। मंत्री का यह बयान सही नहीं है।

असलियत यह है कि 270 लाख टन गेहूं खुले में पड़ा हुआ है और इसे पालीथीन की पन्नी से ढका हुआ है। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि इस तरीके से गेहूं कितना सुरक्षित बचेगा। बारिश में गेहूं के सड़ने की जितनी भी रिपोर्ट मीडिया में आई हैं उनका इसी पद्धति से भंडारण किया गया था।

अगर मंत्री के अनुसार पालीथीन से ढका गेहूं वैज्ञानिक पद्धति से भंडारण है तो इसका उनके पास क्या जवाब है कि शेष बचे हुए 66 लाख टन गेंहू के लिए सरकार पालीथीन का इंतजाम क्यों नहीं कर पाई है?

हालात को और बिगाड़ने के लिए थॉमस ने प्रधानमंत्री को पत्र लिखकर केंद्रीय पूल के लिए सरकारी खरीद की सीमा तय करने को लिखा है। उनके कहने का मतलब यह है कि सरकार को केवल 240 लाख टन गेहूं और चावल की खरीदारी करनी चाहिए और शेष निजी व्यापारियों के लिए छोड़ देना चाहिए। इससे खतरनाक दलील और हो ही नहीं सकती।

गेहूं और चावल दो ही ऐसे खाद्यान्न हैं, जिन्हें सरकार न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खरीदती है। सरकार 25 फसलों का न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित करती है, लेकिन खरीदती है केवल दो। न्यूनतम समर्थन मूल्य पर खरीद के कारण ही गेहूं और चावल का उत्पादन लगातार बढ़ रहा है। गेहूं और चावल की सरकारी खरीद भी तभी होती है जब निजी व्यापारी मनमाफिक खरीद कर चुके होते हैं। अगर सरकारी खरीद को आंशिक तौर पर भी कम किया जाता है तो निजी व्यापारी पूल बनाकर किसानों से कौड़ियों के भाव गेहूं–चावल खरीद लेंगे। केवी थॉमस जो सुझाव दे रहे हैं उसमें कुछ नया नहीं है। उद्योग जगत अरसे से यह मांग करता आ रहा है।

असलियत यह है कि 270 लाख टन गेहूं खुले में पड़ा हुआ है और इसे पालीथीन की पन्नी से ढका हुआ है। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि इस तरीके से गेहूं कितना सुरक्षित बचेगा। बारिश में गेहूं के सड़ने की जितनी भी रिपोर्ट मीडिया में आई हैं उनका इसी पद्धति से भंडारण किया गया था।

यह प्रयोजन इसलिए किया जा रहा है ताकि देश की खाद्यान्न आत्मनिर्भरता को खत्म करके विदेश से सस्ता खाद्यान्न आयात किया जा सके, किंतु थॉमस इस पर ध्यान नहीं दे रहे कि नई व्यवस्था के कितने घातक परिणाम होंगे। ऐसी परिस्थितियों का निर्माण कर जिनमें किसान गेहूं–चावल उगाना बंद कर दें, सरकार किसानों की आजीविका पर चोट करने के साथ–साथ विदेशों से भारी मात्रा में खाद्यान्न मंगाने की कोशिश कर रही है।

यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि जब भारत खाद्यान्न का आयात करता है तो अंतरराष्ट्रीय बाजार में इनकी कीमत आसमान छूने लगती हैं। इसका सीधा सा कारण यह है कि भारत को भारी मात्रा में खाद्यान्न की आवश्यकता पड़ती है। पेट्रोलियम पदार्थों के भारी आयात में विदेशी मुद्रा भंडार की बड़ी राशि गंवाने वाला भारत अगर खाद्यान्न भी आयात करने लगेगा तो इसकी क्या हालत होगी। ऐसा होने पर भुखमरी के शिकार लोगों की संख्या और बढ़ जाएगी। खाद्यान्न के बढ़ते दाम गरीबों की ही नहीं, मध्यम वर्ग की भी कमर तोड़ देंगे। जिस महत्वपूर्ण तथ्य की ओर ध्यान नहीं दिया जा रहा वह यह है कि खाद्य सुरक्षा के साथ किसी भी कीमत पर समझौता नहीं किया जा सकता। गरीबों का पेट भरना राष्ट्रीय जिम्मेदारी है और अब भारी अतिरिक्त खाद्यान्न को देखते हुए इससे मुंह चुराने का हमारे पास कोई बहाना नहीं बचा है। ❑

कैसे दूर हो किसानों के संकट

एक ओर जहां यह सच है कि भारत के करोड़ों किसानों का आर्थिक संकट बढ़ रहा है, वहीं सच यह भी है कि सरकार के झोले में किसानों की भलाई के नाम पर बनाए गए कार्यक्रमों व स्कीमों की कोई कमी नहीं है। एक ओर खाद की सब्सिडी है तो दूसरी ओर फसल की सरकारी खरीद का आश्वासन है। एक ओर ट्रैक्टर खरीदने के लोन हैं तो दूसरी ओर किसान क्रेडिट कार्ड का झुनझुना है। पर सवाल यह है कि इन विभिन्न स्कीमों ने आखिर साधारण किसानों को कितनी राहत दी है? एक किसान महीनों की कड़ी मेहनत के बाद अपनी फसल को मंडी लेकर जाता है तो वहां उसे सरकार द्वारा घोषित मूल्य नहीं मिलता है।

■ भारत डोगरा

एक ओर जहां यह सच है कि भारत के करोड़ों किसानों का आर्थिक संकट बढ़ रहा है, वहीं सच यह भी है कि सरकार के झोले में किसानों की भलाई के नाम पर बनाए गए कार्यक्रमों व स्कीमों की कोई कमी नहीं है। एक ओर खाद की सब्सिडी है तो दूसरी ओर फसल की सरकारी खरीद का आासन है। एक ओर ट्रैक्टर खरीदने के लोन हैं तो दूसरी ओर किसान क्रेडिट कार्ड का झुनझुना है। पर सवाल यह है कि इन विभिन्न स्कीमों ने आखिर साधारण किसानों को कितनी राहत दी है? एक किसान महीनों की कड़ी मेहनत के बाद अपनी फसल को मंडी लेकर जाता है तो वहां उसे सरकार द्वारा घोषित मूल्य नहीं मिलता है। अब वह फसल लेकर कहां जाए? मजबूरी में वह फसल को सस्ते दाम पर व्यापारियों को बेचकर घर लौट आता है।

एक तो वैसे ही सरकार किसान की मेहनत की तुलना में कम कीमत घोषित करती है, दूसरी ओर वह कीमत भी किसान को नहीं मिल पाती है। किसान को बेहतर ढंग से कर्ज देने के दावे की वास्तविकता जाननी हो तो किसी ग्रामीण बैंक के आसपास घूम आइए। वहां सौदेबाजी करवाने वाले कई दलाल मिल जाएंगे, जिनकी अधिकारियों से सांठगांठ रहती है। नतीजा यह है कि किसानों को सरकार जो राहत देने का दावा करती है, वह पैसा तो कमीशन व भ्रष्टाचार में ही निकल जाता है।

अब तो किसान संगठन यह सवाल भी उठाने लगे हैं कि सरकार उनके नाम पर जो खर्च करती है उसका वास्तविक लाभ रासायनिक खाद व कीटनाशक बनाने वाली कंपनियों को मिलता है या किसानों को? आखिर जिन कंपनियों द्वारा बेचे गए बीजों से किसानों की काफी क्षति हो चुकी है, सरकारी तंत्र क्यों उन कंपनियों के प्रसार को प्रोत्साहन दे रहा है? पहले तो सरकारी बीज संस्थान स्वयं जिम्मेदारी संभाल रहे थे, अब वे बीज का संवेदनशील कार्य निजी व बहुराष्ट्रीय कंपनियों को क्यों सौंपते जा रहे हैं?

किसान को बेहतर ढंग से कर्ज देने के दावे की वास्तविकता जाननी हो तो किसी ग्रामीण बैंक के आसपास घूम आइए। वहां सौदेबाजी करवाने वाले कई दलाल मिल जाएंगे, जिनकी अधिकारियों से सांठगांठ रहती है। नतीजा यह है कि किसानों को सरकार जो राहत देने का दावा करती है, वह पैसा तो कमीशन व भ्रष्टाचार में ही निकल जाता है।

भारत का गांव यदि आज भी लुट रहा है तो इसकी बड़ी वजह यह है कि जाति व अन्य संकीर्ण आधारों पर गांव बंटा हुआ है। विशेषकर दलितों, आदिवासियों व भूमिहीन मजदूरों से अधिक अन्याय होता है। इस तरह गांव की एकता बन नहीं पाती है व बाहरी लूट को रोका नहीं जाता है। यदि सब भेदभाव हटाकर गांववासियों की आपसी एकता मजबूत हो जाए तो कचहरी, नशे इत्यादि पर जो पैसा नष्ट होता है उसे काफी हद तक रोका जा सकता है।

सवाल है कि सरकार किसानों के साथ है या इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों के साथ? ऐसा क्यों है कि अनेक सरकारी अधिकारी और मंत्री इन कंपनियों के हितों को आगे बढ़ाने में गहरी रुचि लेते हैं? इन सवालों की गहराई में जाएं तो स्पष्ट हो जाएगा कि केंद्र सरकार की कथनी और करनी में बहुत फर्क है।

सरकार के कुछ शीर्ष मंत्रियों ने तो यहां तक कहा कि वे देश को तभी विकसित मानेंगे जब 85 प्रतिशत लोग शहरों में रहेंगे। सवाल यह है तब इतने किसान कहां जाएंगे? उनके लिए वैकल्पिक रोजगार इतने बड़े स्तर पर कहां और कैसे उपलब्ध होंगे? इन सवालों के सरकार के पास कोई जवाब नहीं है।

यहां यह बताना भी जरूरी है कि कुछ अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थान भी किसानों की संख्या में काफी कमी की जरूरत को सैद्धांतिक समर्थन देते रहे हैं। इसलिए आज यह कहना जरूरी हो गया है कि भारत छोटे किसानों का देश है। हमें उन्हें मजबूत करना है। उन्हें हटाने की सोच का जमकर विरोध करना चाहिए। ऐसी नीतियां अपनानी चाहिए जिनसे छोटे किसानों का आर्थिक आधार मजबूत हो। पश्चिमी देशों में जिस तरह का औद्योगीकरण अपनाया गया, उसमें किसानों व दस्तकारों को तेजी से कम किया गया। पर आज के भारत में यह मॉडल कतई उचित नहीं है। इसके स्थान पर हमें ऐसा ग्रामीण विकास चाहिए जो छोटे किसानों को मजबूत करे। साथ ही विशेष तरह के कुटीर व लघु उद्योगों में ग्रामीण परिवारों को विविध तरह के रोजगार उत्पन्न करवाएं।

ग्रामीण व कस्बे स्तर के उद्योग ऐसे होने चाहिए जो किसानों को उजाड़ें नहीं अपितु उन्हें गांव में ही अतिरिक्त रोजगार देकर उनका आधार मजबूत करें। किसानों की भलाई की बात को करते हुए हमें भूमिहीन कृषि मजदूरों व ग्रामीण दलित–आदिवासी को भी नहीं भूलना चाहिए। उन्हें गांव समाज में पर्याप्त सम्मान देते हुए उनके लिए भी कुछ भूमि की व्यवस्था करनी चाहिए तथा साथ ही परंपरागत व नई दोनों तरह की दस्तकारियों में उनके रोजगार को प्रोत्साहित करना चाहिए।

यदि गांववासी कहें कि हम अपने गांव के मोची के जूते को पहनना पसंद करेंगे या अपने गांव के जुलाहे के कपड़े को प्राथमिकता देंगे तो इससे मृतप्राय हो रहे कुटीर उद्योगों को नया जीवन मिल सकेगा जो गांधी जी का सपना भी था। मजदूरों के स्थान पर किसान तेजी से ट्रैक्टर ही नहीं लाए हैं बल्कि हाव्रेस्टर से फसल की कटाई भी किराए पर करवाने लगे। उन्होंने नहीं सोचा कि इस तरह की कटाई से चारे–भूसे की बर्बादी होती है।

अब हाव्रेस्टर से कटाई के दाम बढ़ रहे हैं तो किसानों को अपने मजदूर फिर याद आ रहे हैं। आगे चलकर डीजल और महंगा होगा तो बैल भी बहुत याद आएंगे। किसान को नहीं भूलना चाहिए कि गांव स्तर की आत्मनिर्भरता वह जितना छोड़ेगा, उतना ही उसका आर्थिक संकट बढ़ेगा। साथ ही गांव की एकता भी बहुत जरूरी है। भारत का गांव यदि आज भी लुट रहा है तो इसकी बड़ी वजह यह है कि जाति व अन्य संकीर्ण आधारों पर गांव बंटा हुआ है। विशेषकर दलितों, आदिवासियों व भूमिहीन मजदूरों से अधिक अन्याय होता है। इस तरह गांव की एकता बन नहीं पाती है व बाहरी लूट को रोका नहीं जाता है। यदि सब भेदभाव हटाकर गांववासियों की आपसी एकता मजबूत हो जाए तो रित, कचहरी, नशे व अश्लील सामग्री पर गांव का जो पैसा नष्ट होता है, उसे काफी हद तक रोका जा सकता है।

यदि यह एकता व्यापक बने तो दहेज, शादी–ब्याह के बढ़ते खर्च व अन्य सामाजिक कुरीतियों को भी रोका जा सकता है। इस तरह की सभी बर्बादी रोक कर ध्यान खेती–किसानी, पशुपालन व कुटीर उद्योग बचाने पर केंद्रित करना चाहिए। इस दिशा में पहला कदम तो यह है कि गांव की हरियाली बढ़ाई जाए, चरागाह की रक्षा की जाए या उनको नया जीवन दिया जाए।

दूसरा कदम यह है कि जल–संरक्षण किया जाए, वर्षा के पानी को रोका जाए, तालाब बनाए जाएं व परंपरागत जल–स्रोतों की रक्षा की जाए। सरकार किसानों के नाम पर जो धन अभी अन्य तत्वों को दे रही है वह गांव में हरियाली बढ़ाने व जल–संरक्षण जैसे सबसे जरूरी कायरे के लिए सीधा गांव–समुदायों को दे दिया जाना चाहिए। साथ ही कृषि व ग्रामीण विकास के लिए उपलब्ध बजट को भी सरकार को तेजी से बढ़ाना चाहिए। ❑

टुकड़ा-टुकड़ा नाकाम कोशिशें

वित्त मंत्री के पद पर रहते हुए प्रणब मुखर्जी ने घोषणा की थी कि अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए रिजर्व बैंक कुछ महत्त्वपूर्ण फैसलों की घोषणा करेगा। उनके कहे अनुसार घोषणाएं तो हुई पर अर्थव्यवस्था ने उन्हें ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं माना है। अर्थव्यवस्था तो दूर, उन्हें शेयर बाजार ने भी अहम नहीं माना। कुल मिलाकर जो घोषणाएं रिजर्व बैंक ने इस बीच की हैं, उनका उद्देश्य यही है कि भारत में डॉलर की एंट्री आसान हो जाए। पर डॉलर का आना सिर्फ इस बात पर निर्भर नहीं करता है कि उनका आना आसान हो जाए।

■ **आलोक पुराणिक**

अर्थव्यवस्था का मामला जिंदगी की तरह का होता है। उसके कई फैसले अच्छे परिणाम देते हैं और कई बुरे भी साबित होते हैं। पर फैसले तो हर हाल में लेने ही पड़ते हैं। अच्छा है या बुरा, यह बाद में देखा जाता है इस समय अर्थव्यवस्था की दिक्कत यही है कि केंद्र के स्तर पर, अच्छे–बुरे कैसे भी फैसले नहीं हो हो पा रहे हैं। जो थोड़े बहुत फैसले रिजर्व बैंक टुकड़ों टुकड़ों में ले रहा है, उनसे भी कुछ भला नहीं हो पा रहा है।

वित्तमंत्री के पद पर रहते हुए प्रणब मुखर्जी ने घोषणा की थी कि अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए रिजर्व बैंक कुछ महत्त्वपूर्ण फैसलों की घोषणा करेगा। उनके कहे अनुसार घोषणाएं तो हुई पर अर्थव्यवस्था ने उन्हें ज्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं माना है। अर्थव्यवस्था तो दूर, उन्हें शेयर बाजार ने भी अहम नहीं माना। कुल मिलाकर जो घोषणाएं रिजर्व बैंक ने इस बीच की हैं, उनका उद्देश्य यही है कि भारत में डॉलर की एंट्री आसान हो जाए। पर डॉलर का आना सिर्फ इस बात पर निर्भर नहीं करता है कि उनका आना आसान हो जाए।

विदेशी निवेश के रूप में डॉलर यहां तब आएगा जब यहां एक विश्वसनीय माहौल और नीतिगत स्पष्टता कायम हो। लेकिन यह रिजर्व बैंक की क्षमता के बाहर के मसले हैं। रिजर्व बैंक की घोषणा के बाद विदेशी संस्थागत निवेशक भारतीय बांडों में ज्यादा डॉलर निवेश कर सकेंगे। दीर्घकालीन विदेशी निवेशक जैसे पेंशन फंड भारतीय प्रतिभूतियों में ज्यादा निवेश कर सकेंगे यानी उनकी निवेश पात्रता हो गई है। पर पात्र होने के बाद वे निवेश करेंगे ही, इसकी कोई गारंटी नहीं है।

भारतीय बाजारों में इस समय विदेशी निवेशक बेचकर ज्यादा निकल रहे हैं, निवेश कम कर रहे हैं। मोटे अनुमान के मुताबिक करीब एक साल पहले भारत के पास 289 अरब डॉलर का विदेशी मुद्राकोष था और मौजूदा समय में यह इस रकम के

कच्चे तेल के भाव भले ही कम हो रहे हों, पर गिरते रुपये के चलते भारत को उसका फायदा नहीं हो पा रहा है। पहले एक डॉलर के आयात के 45 रुपये देने होते थे और अब 57 रुपये दिये जा रहे हैं। कुल मिलाकर डॉलर कम हो रहा है जबकि डॉलर चाहिए। इसलिए रिजर्व बैंक ने ऐसे कदमों की घोषणा की है कि डॉलर का आना आसान हो जाए। अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने की टुकड़ा–टुकड़ा कोशिशों में एक कोशिश यह भी है। पर डॉलर समस्या का एक आयाम भर है। पूरी अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए सिर्फ इतना ही काफी नहीं है।

मुकाबले 21 अरब डॉलर कम है। मोटे तौर पर यही स्पष्ट होता है कि विदेशी निवेशक निवेश कम कर रहे हैं और बेच ज्यादा रहे हैं। वह उन्हें रुपये में बेचकर डॉलर में परिवर्तित करके इंडिया से ले जा रहे हैं। इसलिए डॉलर की मांग बढ़ रही है। डॉलर की बढ़ती मांग के ही कारण एक डॉलर एक साल में 45 रुपये से बढ़कर 57 रुपये पर आ गया। यानी एक साल पहले एक डॉलर के बदले 45 रुपये देने होते थे, अब 57 रुपये देने होते हैं। इसलिए महंगे डॉलर के चलते महंगाई भी आयात हो रही है।

कच्चे तेल के भाव भले ही कम हो रहे हों, पर गिरते रुपये के चलते भारत को उसका फायदा नहीं हो पा रहा है। पहले एक डॉलर के आयात के 45 रुपये देने होते थे और अब 57 रुपये दिये जा रहे हैं। कुल मिलाकर डॉलर कम हो रहा है जबकि डॉलर चाहिए। इसलिए रिजर्व बैंक ने ऐसे कदमों की घोषणा की है कि डॉलर का आना आसान हो जाए। अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने की टुकड़ा–टुकड़ा कोशिशों में एक कोशिश यह भी है। पर डॉलर समस्या का एक आयाम भर है। पूरी अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए सिर्फ इतना ही काफी नहीं है।

हमारी अर्थव्यवस्था इस समय जिस सबसे बड़ी समस्या से जूझ रही है, वह है महंगाई। और इससे निपटने की कोई ठोस रणनीति केंद्र सरकार के पास दिखायी नहीं पड़ रही है। ध्वस्त हो चुकी राशन की दुकान को दोबारा व्यवस्थित करने का कोई उपाय कहीं नहीं है। और सबसे बड़ी चिंता की बात यह है कि महंगाई की स्थिति आने वाले दिनों में और खराब होने के आसार हैं क्योंकि नवीनतम खबरों के हिसाब से मानसून की हालत खराब है।

पिछले तीस सालों में इतना कमजोर मानसून कभी नहीं आया था। यह बहुत ही बुरी खबर है सरकार के लिए, रिजर्व बैंक के लिए और आम आदमी के लिए। मानसून के कमजोर होने का सीधा सा मतलब है खाने–पीने की तमाम चीजों की महंगाई। महंगाई लगातार बढ़ती है, तो रिजर्व बैंक के हाथ बंध जाते हैं। वह चाहे तो भी ब्याज दरों को कम करने के कदम नहीं उठा सकता।

सीधा सा मसला यह होता है कि बढ़ी हुई महंगाई को थामने के लिए रिजर्व बैंक ब्याज दरों को या तो बढ़ाता है या उन्हें मौजूदा स्तर पर कायम रखता है। यानी आमतौर पर वह उन्हें कम नहीं करता है। इसका नतीजा यह होता है कि जो उद्योग ब्याज दरों से ज्यादा प्रभावित होते हैं, वे सब परेशानी में आ जाते हैं। कंस्ट्रक्शन उद्योग, ऑटोमोबाइल उद्योग ऐसे ही उद्योगों में शामिल हैं। ऑटोमोबाइल उद्योग कुछ समय पहले तक तेजी से बढ़ते उद्योगों में से एक था लेकिन अब यह भी संकटग्रस्त उद्योग हो गया है। कमजोर मानसून सिर्फ खेती पर ही दुष्प्रभाव नहीं डालता बल्कि वह तमाम उद्योगों को भी परेशान करता है। टिकाऊ और गैर टिकाऊ उपभोक्ता साज–सामान बनाने वाली तमाम कंपनियों ने हाल में यह साफ किया है कि ग्रामीण बाजारों में मजबूती देखने को मिली है। ग्रामीण बाजारों की डिमांड की वजह से कई कंपनियां मंदी से लड़ने में सफल हुई हैं पर लगता है, कमजोर मानसून ग्रामीण इलाकों में भी मांग में मजबूती नहीं रहने देगा। यह आशंका अर्थव्यवस्था के लिए बहुत ही खतरनाक साबित हो सकती है।

मानसून जैसी प्राकृतिक नेमत पर

महत्त्वपूर्ण सवाल यह है कि विदेशी निवेशक इस समय भारत से मुंह क्यों मोड़ रहे हैं? इसकी सबसे बड़ी वजह यह है कि देश में सरकार तो है, पर कुछ साफ नहीं है कि क्या होने वाला है। मसले आखिर में कोर्ट में जाकर अटक जाते हैं। टेलीकॉम उद्योग जो कुछ सालों पहले तक एक चमकदार उद्योग था, उसके नाम पर अब यहां इतनी कोर्ट कचहरी हो रही है कि लगता है, टेलीकॉम का काम मंत्रालय से नहीं कोर्ट से चल रहा है।

हालांकि किसी का वश नहीं होता है पर मानसून की अनिश्चितता के चलते जो महंगाई पैदा होती है, उस पर तो कोई भी सरकार एक हद तक काबू कर सकती है। राशन की दुकान के जरिये गरीबों को कुछ सस्ता अनाज मुहैया कराया जा सकता है। देखा जाए तो घरेलू महंगाई मानसून की कमजोरी की वजह से ज्यादा आशंकित है। रुपया डॉलर के मुकाबले और नीचे आएगा तो आयातित महंगाई और हालत खराब करेगी।

महत्त्वपूर्ण सवाल यह है कि विदेशी निवेशक इस समय भारत से मुंह क्यों मोड़ रहे हैं? इसकी सबसे बड़ी वजह यह है कि देश में सरकार तो है, पर कुछ साफ नहीं है कि क्या होने वाला है। मसले आखिर में कोर्ट में जाकर अटक जाते हैं। टेलीकॉम उद्योग जो कुछ सालों पहले तक एक चमकदार उद्योग था, उसके नाम पर अब यहां इतनी कोर्ट कचहरी हो रही है कि लगता है, टेलीकॉम का काम मंत्रालय से नहीं कोर्ट से चल रहा है। ऐसे ही एवियेशन भी एक चमकदार उद्योग था कुछ समय पहले तक पर आज चाहे निजी एवियेशन कंपनियां हों या सरकारी एयर इंडिया, सबकी हालत खराब है। एयर इंडिया में पायलटों की हड़ताल के मसले को नहीं निपट पा रहे हैं। निजी कंपनियों के पास धन की कमी है और कोई निवेश करने को तैयार नहीं है।

कुल मिलाकर देखें, तो तमाम उद्योगों और समग्र अर्थव्यवस्था की तस्वीर खासी चिंताजनक है। पर चिंताओं के समाधान होते हैं। इस देश ने 1991 के आर्थिक संकट को झेला है, उससे पार पाया है। पर अभी दिक्कत यह है कि संकट तो हैं पर उनसे निपटने की राजनीतिक इच्छाशक्ति गायब है। हाल की चुनावी शिकस्तों के बाद यूपीए सरकार की इच्छाशक्ति कई मामलों में बहुत ही कमजोर हो गयी है। बचा–खुचा काम सरकार के गठबंधन में शामिल तृणमूल कांग्रेस जैसी पार्टियां कर देती हैं। ममता बनर्जी तो लगता है सरकार को कोई फैसला लेने ही नहीं देती हैं।

अर्थव्यवस्था को इस समय समग्र एक्शन की जरूरत है। दिक्कत यह है कि कहीं समग्र दृष्टि नहीं दिख रही है और एक्शन तो एक सिरे से ही नदारद है। ❑

सदस्यता संबंधी सूचना

मान्यवर,,

स्वदेशी पत्रिका आज देश में चल रहे स्वदेशी आंदोलनों का स्थापित प्रतीक बन चुकी है। पिछले कई वर्षों से स्वदेशी पत्रिका ने असंगत एवं एकतरफा वैश्वीकरण, जनविरोधी आर्थिक उदारीकरण के विरोध एवं वैकल्पिक और रचनात्मक स्वदेशी आंदोलन के पक्ष में एक सक्रिय प्रहरी के नाते हमेशा आपको जागरूक बनाया है एवं आपसे संवाद स्थापित किया है। विगत कालखंड में इन सभी मुद्दों पर हमें आप जैसे सजग पाठकों का अपेक्षित सहयोग भी मिलता रहा है और भविष्य में भी मिलेगा ऐसा, विश्वास है।

आपसे आग्रह है कि स्वदेशी पत्रिका की आपकी सदस्यता अवधि यदि समाप्त हो गई हो तो कृपया पिछले समय से आगामी वर्ष तक की राशि धनादेश (मनीआर्डर), चेक एवं मांग पत्र (डिमांड ड्राफ्ट) के माध्यम से शीघ्र भेजने की कृपा करें। पत्रिका के लिफाफे के उपर चिपकाए गए पते की प्रथम पंक्ति में सदस्यता अवधि अंकित है। आप अपनी सदस्यता राशि ''स्वदेशी पत्रिका'' के नाम पत्रिका के कार्यालय के पते पर भेज सकते हैं। सदस्यता अद्यतन न हो पाने की स्थिति में वित्तीय कारणों से पत्रिका आगे जारी रखना कठिन होगा।

सदस्यता शुल्क निम्न प्रकार है।

स्वदेशी पत्रिका	वार्षिक	आजीवन
हिन्दी	100/–	1000/–
अंग्रेजी	100/–	1000/–

हमें आपका सहयोग स्वदेशी आंदोलन को राष्ट्रव्यापी एवं जनोन्मुखी बनाने में प्रमुख भूमिका निभाएगा। कृपया स्वदेशी पत्रिका स्वयं भी पढ़ें एवं अन्य को भी पढ़ने के लिए प्रेरित करें। पत्रिका के संबंध में अपना निष्पक्ष विचार हमें अवश्य भेजें।

पता : **स्वदेशी पत्रिका कार्यालय, 'धर्मक्षेत्र' शिव शक्ति मंदिर, सैक्टर–8, रामकृष्णपुरम्, नई दिल्ली–22**

दृष्टिकोण

मझधार में अर्थव्यवस्था की नाव

बचत घटने से पूंजी निर्माण के संसाधन घटते हैं। सरकार अपनी नाकामी का ठीकरा अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संकट पर फोड़ने का प्रयास कर रही है। यूरोपीय समुदाय के कुछ देशों जैसे–ग्रीस, स्पेन, पुर्तगाल इत्यादि पर आए संकट के चलते विदेशी निवेशकों द्वारा देश में निवेश पर थोड़ा बहुत असर जरूर पड़ा है, लेकिन लगातार बढ़ रही महंगाई, कमजोर होता रुपया और घटता औद्योगिक उत्पादन अंतरराष्ट्रीय संकट की वजह से नहीं, बल्कि सरकार की गलत आर्थिक नीतियों के परिणाम हैं।

■ **डॉ. अश्विनी महाजन**

रिजर्व बैंक द्वारा एक बार फिर बढ़ती महंगाई को काबू में करने के लिए ब्याज दरें नहीं घटाने के निर्णय से अर्थजगत को निराशा हुई है। जनवरी 2010 से लेकर अक्टूबर 2011 तक रिजर्व बैंक ने रेपो रेट और रिवर्स रेपो रेट को कम से कम 13 बार बढ़ाया और दो माह पूर्व अप्रैल 2012 में मात्र एक बार ही रेपो रेट को 50 बेसिस प्वाइंट घटाया गया।

अर्थजगत में यह चिंता व्याप्त है कि ऊंची ब्याज दरों के चलते देश में घरेलू चीजों, कारों और अन्य उपभोक्ता वस्तुओं की मांग तो घट ही रही है, इन्फ्रास्ट्रक्चर समेत मैन्युफैक्चरिंग क्षेत्र में भी न तो निवेश बढ़ रहा है और न ही मांग में इजाफा हो रहा है। औद्योगिक उत्पादन की लागत भी बढ़ रही है, जिससे हमारे उद्योगों में प्रतिस्पर्धा कर पाने की शक्ति शायद ही बची है। इसलिए सभी को उम्मीद थी कि ब्याज की दरें अवश्य घटाई जाएंगी, लेकिन रिजर्व बैंक ने ब्याज की दरों को यथावत रखकर आर्थिक जगत की चिंताओं को और अधिक बढ़ा दिया है। यह स्थिति किसी के लिए भी ठीक नहीं मानी जा सकती।

खाद्य मुद्रास्फीति को काबू में रखने के लिए कृषि उत्पादन और उसकी आपूर्ति बाजारों में बढ़ानी जरूरी है। पिछले एक वर्ष में सरकार द्वारा पेट्रोलियम पदार्थों की कीमतों को बाजार पर छोड़ दिए जाने के कारण कीमत में लगातार वृद्धि हो रही है जो महंगाई का सबब बन रही है।

दो धड़ों में बंटे अर्थशास्त्री सामान्यतः रिजर्व बैंक जब ब्याज दरें घटाता है तो अर्थव्यवस्था में विकास की संभावनाओं के मद्देनजर उद्योग समेत दूसरे सभी महत्वपूर्ण क्षेत्र ऐसे कदमों का स्वागत करते हैं। परंतु इस बार जब रिजर्व बैंक ने ब्याज दरें नहीं घटाने का निर्णय लिया तो अर्थशास्त्रियों ने इसका विरोध नहीं किया, बल्कि कुछ ने तो इसके लिए रिजर्व बैंक की प्रशंसा भी की और कहा है कि महंगाई की ऊंची दर को देखते हुए रिजर्व बैंक द्वारा ब्याज दरों को कम न करने का निर्णय समय की आवश्यकता है।

उनका तो यहां तक कहना है कि अब जबकि महंगाई लगातार दो अंकों में बनी हुई है तो उस पर अंकुश लगाने के लिए ब्याज की दरों को और अधिक बढ़ाना सही कदम हो सकता है।

हालांकि यह अलग बात है कि ज्यादातर उद्योग और निर्माण क्षेत्र के लोगों का मानना है कि भारतीय रिजर्व बैंक को ब्याज की दरें अब घटानी चाहिए। इससे दो लाभ होंगे–एक ओर उद्योगों की लागत घटेगी तो दूसरी ओर लोगों को उपभोक्ता वस्तुएं और अपने घर इत्यादि को खरीद पाना आसान होगा। इससे अर्थव्यवस्था की मंदी को भी थामने में मदद मिलगी। ऊंची

ब्याज दरों से बढ़ी महंगाई ऐसा नहीं कि भारतीय रिजर्व बैंक ब्याज दर घटाकर अर्थव्यवस्था में मंदी को रोकना नहीं चाहता। अप्रैल माह में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा ब्याज दर को घटाने का निर्णय इसी संदर्भ में लिया गया था, लेकिन अर्थव्यवस्था में लगातार ऊंची मुद्रास्फीति बरकरार रहने के कारण रिजर्व बैंक ब्याज की दरों को घटाने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा। मुद्रास्फीति पर रिजर्व बैंक का कोई नियंत्रण नहीं है।

भारत में पिछले लगभग तीन वर्षों से लगातार बढ़ रही मुद्रास्फीति के कई कारण हैं, जिनमें से कोई भी कारण रिजर्व बैंक से संबंधित नही है। पिछला अनुभव यही बताता है कि ब्याज दरों में वृद्धि से कीमतों में वृद्धि रोकने में कोई मदद नहीं मिल सकी है। वर्तमान समय में देश में महंगाई बढ़ने के तीन प्रमुख कारण है। पहला खाद्य पदार्थों की कीमतों में लगातार वृद्धि, दूसरा पेट्रोलियम पदार्थों की बढ़ती कीमतें और तीसरा, रुपये का अवमूल्यन अथवा इसका कमजोर होना।

खाद्य मुद्रास्फीति को काबू में रखने के लिए कृषि उत्पादन और उसकी आपूर्ति बाजारों में बढ़ानी जरूरी है। पिछले एक वर्ष में सरकार द्वारा पेट्रोलियम पदार्थों की कीमतों को बाजार पर छोड़ दिए जाने के कारण कीमत में लगातार वृद्धि हो रही है जो महंगाई का सबब बन रही है। ब्याज दरों को बढ़ाने से महंगाई के इस कारण पर भी कोई असर नहीं पड़ने वाला। इसलिए महंगाई के कारणों की जांच करते हुए उस पर प्रभावी नियंत्रण जरूरी है ताकि देश के आर्थिक विकास को पटरी पर रखा जा सके। रुपये के लगातार कमजोर होने के कारण भी देश में आयातित वस्तुओं की कीमतों में भी लगातार वृद्धि हो रही है।

देश में पेट्रोलियम पदार्थों की 70 प्रतिशत आपूर्ति आयात से होती है और रुपये के अवमूल्यन के चलते पेट्रोलियम आयात महंगे होते जा रहे हैं। यही नहीं उद्योगों के लिए कच्चा माल भी आयात किया जाता है। आयातित धातुएं, इलेक्ट्रॉनिक साजो–सामान और कलपुर्जे इत्यादि सभी महंगे हो रहे हैं। इस कारण औद्योगिक वस्तुओं की उत्पादन लागत भी बढ़ रही हैं। साथ ही साथ ऊंची ब्याज दरें इसमें आग में घी का काम कर रही हैं। विकास की ऊंची दर के लिए जरूरी है कि ब्याज की दरों को नीचे रखा जाए, लेकिन बढ़ती महंगाई के दौर में यह काफी मुश्किल हो जाता है।

एक ओर तो रिजर्व बैंक को महंगाई पर काबू करने के लिए ब्याज की दरों में वृद्धि करनी पड़ती है तो दूसरी ओर ब्याज अर्जित करने वाले वर्ग को बचत करने और उसे बैंकों के पास अपना पैसा जमा करने के लिए प्रेरित करने हेतु ब्याज की दरों को महंगाई की दर से ऊंचा रखना जरूरी हो जाता है। इसलिए देश में आर्थिक वृद्धि की दर को तेज करने के लिए ब्याज दरों को घटाना जरूरी है और ब्याज दरों को घटाने के लिए महंगाई पर काबू पाना जरूरी है। रिजर्व बैंक सही या सरकार रिजर्व बैंक ने वर्तमान आर्थिक हालात के लिए सरकार को जिम्मेदार ठहराते हुए कहा है कि अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने की जिम्मेदारी अकेले रिजर्व बैंक की नहीं है।

सरकार की भी जिम्मेदारी है कि वह अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने के लिए कुछ ठोस प्रयास करे। पिछले लगभग एक वर्ष से आर्थिक विकास की प्रक्रिया को धक्का लगा है। बढ़ती कीमतों से जहां आम जनता का जीना मुहाल हो रहा है वहीं इसके कारण लागत बढ़ने से औद्योगिक विकास में बाधा पहुंच रही हैं। बढ़ती कीमतों के कारण देश में बचत और पूंजी निर्माण भी हतोत्साहित हो रहा है।

देश में कुल पूंजी निर्माण में घरेलू स्त्रोतों का हिस्सा 90 प्रतिशत से भी अधिक का है। बचत घटने से पूंजी निर्माण के संसाधन घटते हैं। सरकार अपनी नाकामी का ठीकरा अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक संकट पर फोड़ने का प्रयास कर रही है। यूरोपीय समुदाय के कुछ देशों जैसे–ग्रीस, स्पेन, पुर्तगाल इत्यादि पर आए संकट के चलते विदेशी निवेशकों द्वारा देश में निवेश पर थोड़ा बहुत असर जरूर पड़ा है, लेकिन लगातार बढ़ रही महंगाई, कमजोर होता रुपया और घटता औद्योगिक उत्पादन अंतरराष्ट्रीय संकट की वजह से नहीं, बल्कि सरकार की गलत आर्थिक नीतियों के परिणाम हैं।

महंगाई के प्रमुख कारण कृषि उत्पादों की कमी के लिए भी सरकार की कृषि के प्रति उदासीनता जिम्मेदार है। किसानों को अधिक उत्पादन के प्रोत्साहित करना होगा। लाभकारी मूल्य, कृषि विकास के लिए सरकारी प्रोत्साहन, सिंचाई की बेहतर सुविधाएं, अच्छे किस्म के बीज आदि कुछ ऐसे कदम हैं, जिन्हें उठाने के लिए सरकार को किसी की अनुमति नहीं चाहिए। रुपये की कमजोरी थामने के लिए सोने और चांदी के आयात पर रोक के साथ–साथ चीन से होने वाले आयातों पर नियंत्रण जैसे कदमों को तत्काल उठाया जा सकता है। इसके साथ ही सरकार को लोक लुभावन नीतियों को खत्म करने और अपने खर्चों में कटौती करनी होगी। यदि यह कदम उठाए जाते हैं तो रिजर्व बैंक को भी ब्याज दरें घटाने में कोई कठिनाई नहीं होगी और देश को आर्थिक विकास की राह पर लाया जा सकेगा। ❑

नहीं चलेगा - ग्रीस संकट का बहाना

आखिर यूरोप ही नहीं, दुनिया भर की वित्तीय प्रणाली ध्वस्त क्यों हुई इसका कोई सर्वमान्य विश्लेषण जब तक नहीं रखा जाएगा, संकट का मूल समझ में कहां आएगा। सरंक्षणवाद केवल कहने से नहीं रुकेगा, जब अपने घर में आग लगी हो तो कोई पड़ोसी की चिंता नहीं करता। वह भी उस हालत में, जब स्वयं आग कैसे बुझाए यही जानकारी नहीं हो। तो संकट दिनोंदिन ज्यादा गंभीर हो रहा है, पर समाधान के रास्ते नदारद हैं और यह संकट मूल अर्थव्यवस्था के संकट से ज्यादा गंभीर है।

■ **अवधेश कुमार**

मैक्सिको के लॉस केबोस से हमारे प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने दुनिया के गंभीर संकट में होने का जो बयान दिया है, उसका खंडन होना संभव नहीं है। दुनिया के प्रमुख देशों के नेताओं को इस बात का अहसास है कि वे वाकई गंभीर संकट के दौर से गुजर रहे हैं। इसलिए प्रधानमंत्री ने जो कुछ कहा, वह केवल उन अहसासों का सार्वजनिक प्रकटीकरण है।

किंतु इसके बाद उन्होंने जो कुछ कहा, उससे सहमत होने में काफी हिचक है। उन्होंने कहा कि इसका जल्द ही कोई हल ढूंढ़ना होगा और प्रमुख विकासशील एवं विकसित देशों से उम्मीद जाहिर की कि वह आर्थिक संकट का हल ढूंढ़ लेगा।

आर्थिक संकट की गहराई, अब तक के प्रयासों की विफलताओं तथा नेताओं की सोच को आधार बनाएं तो यह मानने का कोई कारण नहीं है कि इसका कोई जल्दी में हल निकल सकता है और वाकई ऐसा हो जाएगा।

प्रधानमंत्री का यह वक्तव्य विदेश की धरती से उस समय आया है, जब अंतरराष्ट्रीय रेटिंग एजेंसी फिच ने अपनी नई रेटिंग यानी आकलन में साफ कर दिया है कि भारत की साख पर बट्टा लग चुका है। हालांकि फिच ने पहले भी भारत को बीबीबी नकारात्मक रेटिंग दी थी, जिसका अर्थ होता है कर्ज चुकता करने में विपरीत समस्याओं का सामना करना। यह बाहरी निवेश की उपयुक्तता की दृष्टि से न्यूनतम स्तर है।

ध्यान रखिए, कुछ ही दिनों पहले स्टैंडर्ड एंड पुअर्स (एसएंडपी) ने भी कहा था कि अगर यही स्थिति रही तो वह भारत की रेटिंग घटाकर सीसी यानी जंक या कबाड़ कर देगी। सीसी का अर्थ है अत्यंत कमजोर अर्थव्यवस्था। यही बात फिच ने दूसरे शब्दों में कही है। रेटिंग पर सवाल सरकार ने दोनों रेटिंग एवं आकलनों को खारिज कर दिया है।

हालांकि रेटिंग एजेंसियों की प्रासंगिकता, उनके आकलन के तरीकों से व्यापक असहमति की गुंजाइश है, पर वर्तमान आर्थिक ढांचे में उन्होंने जो कुछ कहा है, उसका अर्थ यह है कि संकट समझते हुए भी आप समाधान नहीं कर पा रहे और इससे यह ज्यादा गंभीर हो रहा है।

एसएंडपी और फिच दोनों ने ऐसा करने के लिए धीमी विकास गति, बढ़ती महंगाई, खजाने का बढ़ता घाटा तथा फैसले लेने में राजनीतिक प्रतिष्ठान की सुस्ती को आधार बनाया है। सरकारी आंकड़ों के आधार पर आप इसके आकलन पर प्रश्न उठा सकते हैं, पर इनमें ऐसी कौन–सी बात है, जिसे आप पूरी तरह गलत बता देंगे?

जरा इनके आकलनों के आधार को

मैक्सिको में भी योजना आयोग के उपाध्यक्ष मोंटेक सिंह अहलूवालिया ने कहा कि अगर यूरो जोन का संकट दूर नहीं हुआ तो भारत उससे गहरे प्रभावित होगा। प्रधानमंत्री के मुख्य आर्थिक सलाहकार कौशिक बसु ने भी रेटिंग एजेंसियों से असहमति जाहिर की, पर यह भी कहा कि अगले छह महीने अर्थव्यवस्था के लिए अहम हैं और इस बीच पर्याप्त कदम नहीं उठाए गए तो मुश्किलें और बढ़ जाएंगी।

जो प्रधानमंत्री कह रहे हैं, उसके आलोक में विचार करिए। चूंकि जी–20 या इसके पहले ब्रिक्स बैठक का आयाम पूरी दुनिया है, इसलिए वहां जो कुछ कहा जाएगा, वह किसी एक देश के संदर्भ में नहीं होगा।

प्रधानमंत्री एवं वित्तमंत्री दोनों कई बार कह चुके हैं कि देश गंभीर आर्थिक संकट से गुजर रहा है और इसके लिए कठोर फैसला लेना जरूरी है। हां, वे इसके पीछे वैश्विक संकट विशेषकर यूरोजोन संकट को भी प्रमुख कारण मानते हैं।

मैक्सिको में भी योजना आयोग के उपाध्यक्ष मोंटेक सिंह अहलूवालिया ने कहा कि अगर यूरो जोन का संकट दूर नहीं हुआ तो भारत उससे गहरे प्रभावित होगा। प्रधानमंत्री के मुख्य आर्थिक सलाहकार कौशिक बसु ने भी रेटिंग एजेंसियों से असहमति जाहिर की, पर यह भी कहा कि अगले छह महीने अर्थव्यवस्था के लिए अहम हैं और इस बीच पर्याप्त कदम नहीं उठाए गए तो मुश्किलें और बढ़ जाएंगी। यह बात केवल भारत के संदर्भ में हो, ऐसा नहीं है। दुनिया के प्रमुख देशों की यही स्थिति है।

आखिर नई सदी में यूरो के आविर्भाव के बाद माना गया था कि सामूहिक रूप से विश्व की सबसे ज्यादा शक्तिशाली अर्थव्यवस्था की प्रतिनिधि मुद्रा होने के कारण यह डॉलर को चुनौती देगी। खुद अमेरिका भी यूरोपीय संघ की आर्थिक मांसपेशी के सामने कमजोर दिखेगा। स्थिति उसके उलट क्यों हो गई?

अगर आप रेटिंग सहित दूसरी एजेंसियों के आकलनों को देखेंगे तो उनमें भी संकट की चुनौतियों के अनुरूप राजनीतिक नेतृत्व द्वारा उपयुक्त कदम न उठाए जाने या उठाए जाने में हिचक की बात कही गई है। इस संकट के दावानल में यूरोप की 11 सरकारें चलीं गई। कुछ जाने वाली हैं।

अमेरिका में रिपब्लिकन पार्टी की पराजय हुई और अब ओबामा की लोकप्रियता गिर रही है। आर्थिक संकट के दावानल ने दुनिया भर की राजनीति को झुलसा दिया, लेकिन समाधान नहीं निकला। आज इस बात पर आम सहमति है कि 2008 में उभरे संकट को जितना बड़ा माना गया, उससे आज का संकट कहीं बड़ा है। इसका अर्थ यह हुआ कि उस दौरान अर्थव्यवस्थाओं को संकट की अग्नि से बचाने के लिए राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर जो भी कदम उठाए गए, वे सफल नहीं हुए।

भारत में हालांकि कहा गया कि संकट हमारे यहां नहीं है, पर इसके लिए सरकार ने अक्टूबर 2008 से मार्च 2009 तक कई आर्थिक पैकेज दिए। यानी इनमें भारत भी शामिल था। अगर वे सफल होते तो आज भारत सहित दुनिया के

एसएंडपी और फिच दोनों ने ऐसा करने के लिए धीमी विकास गति, बढ़ती महंगाई, खजाने का बढ़ता घाटा तथा फैसले लेने में राजनीतिक प्रतिष्ठान की सुस्ती को आधार बनाया है। सरकारी आंकड़ों के आधार पर आप इसके आकलन पर प्रश्न उठा सकते हैं, पर इनमें ऐसी कौन–सी बात है, जिसे आप पूरी तरह गलत बता देंगे?

सभी प्रमुख देशों के नेतृत्व वर्ग के चेहरे पर हवाइयां नहीं उड़ रही होतीं। जिस किसी घटना या कदम से इसके समाधान की ओर बढ़ने की संभावना बताई जाती है, वह या तो उस अनुरूप घटित नहीं होता या फिर बेअसर हो जाती है।

ग्रीस में दोबारा मतदान होने के बाद एंटोनियो समाराज की न्यू डेमोक्रेसी पार्टी भी पर्याप्त बहुमत से पीछे रह गई। यह पार्टी ग्रीस के कर्ज संकट के लिए यूरोपीय संघ के साथ बहुत हद तक सहमति बनाने का विचार रखती है। इसे जितनी भी बढ़त मिली, उससे जो सकारात्मक संदेश जाना चाहिए था, नहीं गया।

दुनिया भर के शेयर बाजार लुढ़कते चले गए। यह ऐसा कोई पहला उदाहरण नहीं है। परेदस में माथापच्ची हमारे प्रधानमंत्री अर्थशास्त्र के मर्मज्ञ हैं और कहा जाता है कि दुनिया इससे संबंधित उनकी बातों को ध्यान से सुनती है।

सवाल है कि क्या उन्होंने स्वयं अपने देश में उठाए गए कदमों और बाहर दिए गए सुझावों के जरिये ऐसे उपायों की ओर दुनिया का ध्यान खींचा है, जो वाकई गंभीर संकट का अंत कर सके या इसे कम करने में सहायक हो सके?

नए वित्तीय वर्ष की तिमाही में भारत का औद्योगिक विकास 0.1 प्रतिशत रहा और इसके पूर्व वह नकारात्मक हो गया। इस वर्ष की विकास दर 6 प्रतिशत के आसपास ही रह सकता है। घाटा आसमान पर है और आपका मुद्रा डॉलर के सामने लगातार कमजोर बना हुआ है। जब आप अपने घर में लगी आग को बुझाने या इसकी ताप कम करने में कामयाब नहीं हुए तो फिर दुनिया को रास्ता कैसे दिखा सकते हैं। किंतु मौजूदा दुनिया ऐसी है, जहां आप यह कारनामा कर सकते हैं।

भारत की ओर से मनमोहन सिंह, प्रणब मुखर्जी, अहलूवालिया, कौशिक बसु आदि की मंडली ने संकट की गंभीरता का तो अहसास कराया, लेकिन रास्ता सुझाया तो विश्व बैंक एवं अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष के पास निवेश राशि में वृद्धि का, उसकी निर्णय लेने की प्रणाली में और सुधार का, डॉलर या यूरो की जगह आपस में स्थानीय मुद्राओं में कारोबार का।

ये बातें हम लंबे समय से सुन रहे हैं और जी–20 व ब्रिक्स दोनों में यही विचार गूंज रहे हैं। ब्रिक्स ने आपसी मुद्रा में कारोबार का निश्चय किया, लेकिन इससे यूरो संकट या समग्र आर्थिक संकट के समाधान में क्या योगदान होगा? यह विचार आपसी लाभ के लिए ठीक है, क्योंकि विदेशी मुद्रा के मुकाबले आपके मुद्रा के मूल्यों की अस्थिरता इससे प्रभावित नहीं होगी, लेकिन यह एक प्रकार का आक्रामक आर्थिक क्षेत्रीयतावाद भी है।

बेशक, डॉलर एवं यूरो ही लेन–देन की मुद्रा क्यों होनी चाहिए? यह अनुचित नहीं, पर अगर भूमंडलीकरण के सिद्धांतों के आलोक में विचार करें तो यह संरक्षणवाद है। यूरोपीय संघ बैकिंग संघ बनाने, बैंकों की कार्यप्रणाली का बेहतर पर्यवेक्षण विकसित करने, जमा पूंजी को गारंटी के तहत लाने तथा यूरो प्रबंधन को बेहतर करने आदि का सुझाव दे रहा है। इसका असर कितना होगा अभी कहना कठिन है, लेकिन डूबते बैंकों को बचाने भर से यूरो संकट का समाधान नहीं हो सकता है।

आखिर यूरोप ही नहीं, दुनिया भर की वित्तीय प्रणाली ध्वस्त क्यों हुई इसका कोई सर्वमान्य विश्लेषण जब तक नहीं रखा जाएगा, संकट का मूल समझ में कहां आएगा। सरंक्षणवाद केवल कहने से नहीं रुकेगा, जब अपने घर में आग लगी हो तो कोई पड़ोसी की चिंता नहीं करता। वह भी उस हालत में, जब स्वयं आग कैसे बुझाए यही जानकारी नहीं हो। तो संकट दिनोंदिन ज्यादा गंभीर हो रहा है, पर समाधान के रास्ते नदारद हैं और यह संकट मूल अर्थव्यवस्था के संकट से ज्यादा गंभीर है। ❑

'स्वदेशी' केवल वस्तुओं तक सीमित नहीं, इसमें स्वदेशी का भाव भी पर्याप्त मात्रा में है। वास्तव में राष्ट्र की अस्मिता का उद्‌गार है – स्वदेशी। स्वदेशी का अभियान और राष्ट्र प्रेम का साक्षात्कार स्वदेशी वस्तुओं के रूप में सामने आता है। स्वदेशी वस्तुओं में राष्ट्र–भावना के दर्शन होते हैं।

महात्मा गांधी ने स्वदेशी के इस शस्त्र को अच्छी तरह परखा और घर–घर में महिलाओं तक, अति दूर देहातों में भूमिहीन खेतीहर मजदूरों तथा कामगारों तक स्वदेशी का भाव पहुंचाया। महात्मा गांधी ने अशिक्षित एवं अर्ध–शिक्षित लोगों को भी राष्ट्र प्रेम से भर दिया।

यूरोप की बेजा मदद

जी–20 का आकलन है कि मौद्रिक और वित्तीय नीतियों में सामंजस्य स्थापित होने पर यूरोप का संकट नियंत्रण में आ जाएगा। जी–20 के इस आकलन से मैं सहमत नहीं हूं। इतना सही है कि नीतियों में सामंजस्य स्थापित होने पर ग्रीस जैसे कमजोर देशों की समस्या कुछ नियंत्रण में आ जाएगी. . .

■ डॉ. भरत झुनझुनवाला

जी–20 शिखर सम्मेलन में भारत ने यूरोप की मदद के लिए 10 अरब डॉलर (करीब 56000 करोड़ रुपये) की रकम उपलब्ध कराने का वचन दिया है। रूस तथा ब्राजील ने भी इतनी ही रकम उपलब्ध कराने का वचन दिया है। चीन ने 43 अरब डॉलर उपलब्ध कराए हैं।

भारत द्वारा उपलब्ध कराई गई इस रकम की विशालता का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि अपने देश में इतनी ही रकम केंद्र तथा राज्य सरकारों द्वारा जनता को स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने के लिए एक वर्ष में व्यय की जाती है।

जी–20 शिखर सम्मेलन में सहमति बनी है कि यूरोपीय देशों की प्रमुख समस्या मौद्रिक एवं वित्तीय नीतियों का बंटवारा है। यूरोपीय बैंक द्वारा सभी सदस्य देशों की एकल मौद्रिक नीति निर्धारित की जाती है जैसे कितने यूरो छापे जाएं अथवा ब्याज दर कितनी हो? सभी सदस्य देश यूरो मुद्रा का उपयोग करते हैं। यूरो का मूल्य यूरोपीय बैंक की नीतियों से निर्धारित होता है, जो सभी सदस्य देशों को एक साथ प्रभावित करता है, परंतु हर सदस्य देश अपनी अलग वित्तीय नीति निर्धारित करता है, जैसे टैक्स की दर क्या हो, डीजल पर कितनी सब्सिडी दी जाए, बेरोजगारी भत्ता दिया जाए या नहीं इत्यादि।

समस्या है कि मौद्रिक तथा वित्तीय नीति में सामंजस्य नहीं है। जैसे मौद्रिक नीति आसान हो एवं ब्याज दर न्यून हो तो व्यापार बढ़ता है, सरकार को टैक्स अधिक मिलता है और बेरोजगारी भत्ता देने की क्षमता बढ़ती है। मुद्रा बाजार में तरलता रहने के कारण सरकार को ऋण भी आसानी से मिल जाता है। इसके विपरीत मौद्रिक नीति कठोर होने के कारण सरकार को आसान ऋण नहीं मिलता है। सरकार को ऊंची दर पर ऋण लेना पड़ता है। सरकार पर ब्याज का बोझ बढ़ता है। सरकार की ऋण अदायगी की क्षमता का वस होता है। सरकार की साख पर धब्बा लग जाता है। ऐसा ही ग्रीस में हुआ है।

यह घटनाक्रम न होता यदि मौद्रिक नीति आसान होती। तब ग्रीस की सरकार को ऋण आसानी से उपलब्ध हो जाता। अतः ग्रीस के संकट का कारण यह कहा जा सकता है कि सरकार खर्चीली वित्तीय नीति को अपना रही थी, परंतु यूरोपीय बैंक द्वारा लागू की गई मौद्रिक नीति कठोर थी।

जी–20 शिखर सम्मेलन में सहमति बनी है कि यूरोपीय देशों की प्रमुख समस्या मौद्रिक एवं वित्तीय नीतियों का बंटवारा है। यूरोपीय बैंक द्वारा सभी सदस्य देशों की एकल मौद्रिक नीति निर्धारित की जाती है जैसे कितने यूरो छापे जाएं अथवा ब्याज दर कितनी हो? सभी सदस्य देश यूरो मुद्रा का उपयोग करते हैं।

इसलिए ग्रीस की सरकार को आसान शर्तें पर ऋण नहीं मिला और वह देश संकटग्रस्त हो गया।

जी–20 शिखर सम्मेलन में सहमति बनी है कि यूरोपीय देशों द्वारा मौद्रिक एवं वित्तीय नीतियों के बंटवारे को समाप्त कर दिया जाएगा। यूरोपीय देश एकल वित्तीय नीति बनाने की दिशा में बढ़ेंगे। जिस प्रकार यूरोपीय केंद्रीय बैंक सभी देशों के लिए एकल मौद्रिक नीति बनाता है उसी प्रकार सभी देशों की एकल वित्तीय नीति बनाई जाएगी। जी–20 देशों ने यूरोप को मदद इस शर्त पर ही देना स्वीकार किया है।

जी–20 का आकलन है कि मौद्रिक और वित्तीय नीतियों में सामंजस्य स्थापित होने पर यूरोप का संकट नियंत्रण में आ जाएगा। जी–20 के इस आकलन से मैं सहमत नहीं हूं। इतना सही है कि नीतियों में सामंजस्य स्थापित होने पर ग्रीस जैसे कमजोर देशों की समस्या कुछ नियंत्रण में आ जाएगी। ग्रीस की मनमर्जी से खर्च करने की स्वायत्तता समाप्त हो जाएगी और अनावश्यक ऋण से वह देश बच जाएगा, परंतु मेरे आकलन में यूरोप समेत सभी विकसित देशों जैसे अमेरिका और कनाडा की मूल समस्या है कि ये देश भारत और चीन के सामने प्रतिस्पर्धा में नहीं टिक पा रहे हैं।

अमेरिका में 2008 का संकट इसी कारण उत्पन्न हुआ था। हुआ यूं कि भारत तथा चीन की प्रतिस्पर्धा के कारण अमेरिकी श्रमिकों के वेतन दबाव में आ गए। बैंकों से प्रापर्टी के लिए गए लोन की ये श्रमिक अदायगी नहीं कर सके। फलस्वरूप बैंक को इनकी प्रापर्टी का अधिग्रहण करना पड़ा और इसे आधे–तिहाई मूल्य पर बेचना पड़ा। बैंकों को भारी घाटा लगा और वे संकट में आ गए और साथ–साथ पूरी अर्थव्यवस्था को डुबो दिया।

ग्रीस को ऋण दिया जाएगा जिससे वह पूर्व में लिए गए ऋण की अदायगी कर सके। इस अवधि में ग्रीस की सरकार द्वारा अपने ऋण घटाए जाने की आशा है, परंतु इन कदमों से यूरोप की प्रतिस्पर्धा की ताकत नहीं बढ़ती है। बैंक सुदृढ़ हो जाएं अथवा बेरोजगारी भत्ते में कटौती हो जाए तो माल की उत्पादन लागत नहीं घटती है। अतः यूरोप को मदद देना निष्फल होगा। रूस के प्रधानमंत्री पुतिन ने कहा है कि वह मदद इसलिए दे रहे हैं कि मुद्राकोष की नीति पर प्रभाव डाल सकें। यह तर्क सही है।

यूरोप भी चीन तथा भारत की प्रतिस्पर्धा का सामना करने में उतना ही नाकाम है जितना अमेरिका, परंतु यूरोप के देशों ने प्रतिस्पर्धा क्षमता के क्षीण होने की नीति का सामना करने की अलग नीति बनाई। उन्होंने ऋण लेकर बेरोजगारी भत्ते दिए। फलस्वरूप अर्थव्यवस्था चलती रही, क्योंकि बेरोजगारों के पास भी क्रयशक्ति बनी रही, परंतु सरकार ऋण से दब गई।

यही ग्रीस, स्पेन और इटली के वर्तमान संकट का कारण है। विचार करने का विषय है कि मौद्रिक और वित्तीय नीतियों में सामंजस्य स्थापित करने से यूरोप की प्रतिस्पर्धा की शक्ति सुधरेगी क्या? यूं समझिए कि व्यक्ति भूख और कमजोरी से पीड़ित है। उसे अस्पताल में भर्ती कराया गया है। वहां फिजीशियन और रेडियोलाजिस्ट अलग–अलग उपचार चालू कर देते हैं। ऐसे में यदि दोनों डॉक्टरों के बीच सामंजस्य स्थापित कर दिया जाए तो मरीज को लाभ अवश्य होगा, परंतु भूख और कमजोरी की मौलिक समस्या ज्यों की त्यों बनी रहेगी, क्योंकि लंबे समय तक पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराने की अस्पताल में व्यवस्था होती ही नहीं है। इसी प्रकार मौद्रिक एवं वित्तीय नीतियों में सामंजस्य स्थापित होने से प्रतिस्पर्धा की मौलिक समस्या का समाधान नहीं होता है।

ऐसे ही आकलन के आधार पर अमेरिकी सांसद टॉम कॉबर्न ने यूरोप को मदद देने का विरोध किया है। उन्होंने कहा, हम अच्छे पैसे को रद्दी पैसे के पीछे बहा रहे हैं। यूरोप अंततः ऋण की अदायगी नहीं कर सकेगा। उसकी फिजूलखर्ची को पोषित करने के लिए सहायता देना अनुचित है।

इस पृष्ठभूमि में देखना है कि भारत द्वारा यूरोप को मदद देना उचित है या नहीं। इस ऋण का उपयोग यूरोपीय बैंकों को सुदृढ़ करने के लिए किया जाएगा। ग्रीस को ऋण दिया जाएगा जिससे वह पूर्व में लिए गए ऋण की अदायगी कर सके। इस अवधि में ग्रीस की सरकार द्वारा अपने ऋण घटाए जाने की आशा है, परंतु इन कदमों से यूरोप की प्रतिस्पर्धा की ताकत नहीं बढ़ती है। बैंक सुदृढ़ हो जाएं अथवा बेरोजगारी भत्ते में कटौती हो जाए तो माल की उत्पादन लागत नहीं घटती है।

अतः यूरोप को मदद देना निष्फल होगा। रूस के प्रधानमंत्री पुतिन ने कहा है कि वह मदद इसलिए दे रहे हैं कि मुद्राकोष की नीति पर प्रभाव डाल सकें। यह तर्क सही है। यदि मनमोहन सिंह ने भी इसी विचार से मदद देना स्वीकार किया है तो यूरोप की प्रतिस्पर्धा की मौलिक समस्या को उठाना चाहिए और यूरोप को अपने श्रमिकों के वेतन में कटौती करने को कहना चाहिए। इस मौलिक समाधान के अभाव में सहायता देना व्यर्थ होगा। ❑

निर्यात का सिलसिला थमा क्यों

दुनिया की चुनौतीपूर्ण व्यापार स्थितियों के मद्देनजर वर्ष 2012–13 में निर्यात में 20 फीसदी वृद्धि का लक्ष्य हासिल करना सरल कार्य नहीं है। हमें एक ओर निर्यात के नए बाजारों पर ध्यान देना होगा वहीं दूसरी ओर निर्यात में तेजी के लिए लगातार घरेलू उत्पादन में वृद्धि और गुणवत्तापूर्ण उत्पादन पर ध्यान देना होगा। यह सर्वविदित है कि भारत का निर्यात घटने के पीछे अमेरिका और यूरोपीय देशों की आर्थिक बदहाली जिम्मेदार है। जब यूरोजोन देशों की अर्थव्यवस्था खतरों का सामना कर रही है तो भारतीय निर्यात का स्रोत भी सूखने लगा है।

■ **जयंतीलाल भंडारी**

इस समय देश में निर्यात के मोर्चे पर तमाम चिंताएं और चुनौतियां हैं। अब जरूरत है निर्यात में जबरदस्त वृद्धि की, क्योंकि निर्यात से होने वाली आय में लगातार कमी आ रही है। बढ़ते आयात खर्च के कारण विदेशी मुद्रा भंडार तेजी से घट रहा है। यह पहली जून, 2012 को 290 अरब डॉलर के निम्न स्तर पर पहुंच चुका है। विदेश व्यापार से संबंधित नवीनतम आंकड़े भी बता रहे हैं कि देश का व्यापार घाटा वर्ष 2011–12 के दौरान 170 अरब डॉलर रहा।

यह भी कहा जा रहा है कि वर्ष 2014 तक व्यापार घाटा 278.5 अरब डॉलर के स्तर पर पहुंच सकता है, जो 2004 के 14.3 अरब डॉलर व्यापार घाटे से तकरीबन 20 गुना ज्यादा होगा। निर्यात बढ़ाने के लिए प्रोत्साहनस्वरूप विदेश व्यापार नीति में संशोधनों की अपेक्षा की जा रही थी।

इस संदर्भ में यूपीए–2 सरकार ने निर्यात में मजबूती बहाल करने के लिए विदेश व्यापार नीति में जरूरी सात सूत्रीय कदम उठाए हैं और साथ ही वर्ष 2012–13 में निर्यात में 20 फीसदी वृद्धि का लक्ष्य रखते हुए 360 अरब डॉलर का वार्षिक लक्ष्य निर्धारित किया है।

इसी तरह वर्ष 2013–14 के लिए निर्यात लक्ष्य 500 अरब डॉलर निर्धारित किया गया है। विदेश व्यापार नीति में नए संशोधनों के तहत रोजगारपरक निर्यात क्षेत्रों को ब्याज दरों में मिलने वाली दो फीसदी की छूट को जारी रखा गया है जो अब 31 मार्च, 2013 तक जारी रहेगी। पहले इस छूट का लाभ सिर्फ हैंडलूम, हैंडीक्राफ्ट्स, कारपेट व एसएमई सेक्टर को मिलता था। अब इसमें खिलौने व खेलकूद संबंधी सामग्री, संसाधित कृषि उत्पाद और रेडीमेड गारमेंट्स भी शामिल किए गए हैं।

वाणिज्य मंत्रालय ने निर्यात के लिए नए वैकल्पिक बाजार खोजने के उद्देश्य से लैटिन अमेरिकी और अफ्रीकी बाजार में तो फोकस किया ही अब ऑस्ट्रिया, म्यांमार, नीदरलैंड, यूक्रेन, मोरक्को और उरुग्वे में भी गतिविधियां तेज करने का फैसला किया है। लगभग 45 नई चीजों का निर्यात बढ़ाने के लिए खास रणनीति बनाई गई है। इस नीति में मैन्युफैक्चरिंग को बढ़ावा देने की कोशिश शामिल है। निर्यात बढ़ाने की रणनीति के तहत एक और अच्छा कदम ई–कॉमर्स प्लेटफॉर्म से विदेशी ग्राहकों को बेचे गए सामान को निर्यात सेक्टर की सहूलियतों के दायरे में लाना है। बैंक रियलाइजेशन सर्टिफिकेट अब इलेक्ट्रॉनिक रूप में उपलब्ध होंगो।

निर्यात, वसूली प्रमाण पत्र जारी करने के लिए निर्यातकों को बैंक के पास कोई आवेदन नहीं करना होगा। शून्य शुल्क वाली ईपीसीजी स्कीम को 31 मार्च, 2013

तक बढ़ाया गया है। टेक्नोलॉजी अपग्रेडेशन फंड का लाभ उठा रहे निर्यातक भी अब शून्य शुल्क वाली ईपीसीजी स्कीम का लाभ उठा सकेंगे।

इन रणनीतिक कदमों के साथ–साथ अहमदाबाद, कोल्हापुर और सहारनपुर निर्यात उत्कृष्टता के लिए नए शहर बनाए गाए। अब निर्यातक विभिन्न स्कीमों से प्राप्त स्क्रिप्स का इस्तेमाल देश में उत्पाद शुल्क के भुगतान में कर सकते हैं, पहले यह सुविधा नहीं थी।

स्वाभाविक तौर पर निर्यातकों में इन सुविधाओं और प्रोत्साहनों से खुशी का माहौल बना है। दुनिया की चुनौतीपूर्ण व्यापार स्थितियों के मद्देनजर वर्ष 2012–13 में निर्यात में 20 फीसदी वृद्धि का लक्ष्य हासिल करना सरल कार्य नहीं है। हमें एक ओर निर्यात के नए बाजारों पर ध्यान देना होगा वहीं दूसरी ओर निर्यात में तेजी के लिए लगातार घरेलू उत्पादन में वृद्धि और गुणवत्तापूर्ण उत्पादन पर ध्यान देना होगा।

यह सर्वविदित है कि भारत का निर्यात घटने के पीछे अमेरिका और यूरोपीय देशों की आर्थिक बदहाली जिम्मेदार है। जब यूरोजोन देशों की अर्थव्यवस्था खतरों का सामना कर रही है तो भारतीय निर्यात का स्त्रोत भी सूखने लगा है। भारत के कुल निर्यात का लगभग 35 प्रतिशत अमेरिका और यूरोप के बाजार में पहुंचता है। इन देशों में भारतीय निर्यात के जो क्षेत्र सबसे ज्यादा प्रभावित हो रहे हैं, उनमें जेम्स ऐंड ज्वैलरी, लेदर, टेक्सटाइल, आइटी, फार्मा और कुछ अन्य सेवा क्षेत्र शामिल हैं। हमें बढ़ते हुए विदेश व्यापार घाटे की चिंताओं को समझना होगा। मंदी की चुनौतियों के बीच भी निर्यात बढ़ाने होंगे।

हमें निर्यात बाजारों के लिए रणनीतिक प्रयास करने की आवश्यकता है। अफ्रीका व लैटिन अमेरिकी देशों में भारत के निर्यात को बढ़ावा देने के साथ–साथ पड़ोसी देशों पाकिस्तान, बांग्लादेश, म्यांमार, श्रीलंका, भूटान, थाईलैंड और नेपाल के साथ निर्यात बढ़ाने की कोशिश भी करनी होगी।

भारतीय निर्यातक लैटिन अमेरिकी और ब्रिक्स देशों के साथ कारोबार करने की ओर कदम बढ़ा रहे हैं। ऐसे में स्थानीय मुद्रा में कारोबार करने के फैसले से काफी मदद मिलेगी। वर्ष 1991 के निर्यात और विकास दर के परिप्रेक्ष्य में उभरकर सामने आया यह सबक भी ध्यान में रखना होगा कि निर्यात में तेजी तभी आती है जब घरेलू उत्पादन लगातार बढ़ता है और विकास दर भी बढ़ती है।

हमें समझना होगा कि जब तक कारोबारी मूड और विश्वास में सुधार नहीं होगा, उद्यमियों के लिए भारत में काम करना, निर्यात बढ़ाना आसान नहीं होगा। बेहतर निर्यात संवर्धन के लिए घरेलू स्तर पर उत्पादन और उत्पादकता में सुधार बहुत जरूरी है।

वस्तुतः देश के विदेश व्यापार को अनुकूल करने के लिए विकास दर बढ़ाना होगा, कारोबारी विश्वास बढ़ाना होगा तथा बुनियादी ढांचे में सुधार लाना होगा। पिछले वर्ष वित्तमंत्री ने बजट में नौ फीसदी विकास दर का लक्ष्य रखा था, लेकिन 6.9 फीसदी विकास दर ही प्राप्त हो सकी। नए वित्त वर्ष 2012–13 में सरकार द्वारा 7.6 फीसदी विकास दर का लक्ष्य रखा गया है, लेकिन इस वर्ष विकास दर 5.5 से 6 फीसदी तक सीमित रहने की आशंका है।

12वीं पंचवर्षीय योजना के लिए तय 9 फीसदी के अनुमान पर भी हताशा के बादल दिख रहे हैं। दरअसल, सात–साढ़े सात फीसदी और 9 फीसदी की दर से होने वाले विकास के परिदृश्य में जमीन आसमान का अंतर दिख है। विदेशी निवेशकों पर भी इसका असर देखने को मिलेगा।

उभरते बाजार वाले अधिकांश देशों ने 9 फीसदी की विकास दर वाले दौर में जबरदस्त आर्थिक तरक्की अनुभव की है। यदि भारत लगातार पांच वर्ष तक बढ़िया प्रदर्शन के बाद अब 5.5 से 6 फीसदी की दर पर लौट आया है तो इससे देश की छवि को नुकसान पहुंचा है।

हमें सालाना जिस दर पर पूंजी प्रवाह की आवश्यकता है, उसे देखते हुए निवेशकों का विश्वास प्राप्त करना होगा। कारोबारी घरानों के मुनाफे का विकास दर से सीधा संबंध है। कॉरपोरेट मुनाफे में कमी का असर कुल बचत दर पर पड़ेगा।

विश्व बैंक के 2011 के सर्वेक्षण में भारत को कारोबार करने के लिहाजा से दक्षिण एशिया का सबसे खराब देश बताया गया है। भारत को 183 देश में 132वीं रैंकिंग दी गई है।

हमें समझना होगा कि जब तक कारोबारी मूड और विश्वास में सुधार नहीं होगा, उद्यमियों के लिए भारत में काम करना, निर्यात बढ़ाना आसान नहीं होगा। बेहतर निर्यात संवर्धन के लिए घरेलू स्तर पर उत्पादन और उत्पादकता में सुधार बहुत जरूरी है। पिछले एक–दो साल से नीतिगत मोर्चे पर फैसले न ले पाने से भी निवेश और निर्यात में कमी आई है। अब हमें उद्योगों एवं अर्थव्यवस्था को आगे बढ़ाने के कदमों पर ध्यान देना होगा। ❑

विज्ञान में क्यों पिछड़ा भारत

भारतीय वैज्ञानिकों को लालफीताशाही से मुक्ति और अधिक स्वायत्तता की जरूरत है। देश के वैज्ञानिक संस्थान और राष्ट्रीय प्रयोगशालाएं जब तक नौकरशाही के चंगुल और भाई–भतीजावाद से ग्रस्त रहेंगी, भारत में नए विज्ञान और तकनीक के विकास का रास्ता नहीं खुल सकता है। देश में वैज्ञानिक खोज और आविष्कार के लिए उपयुक्त माहौल बनाना सरकार और खासकर प्रधानमंत्री का ही काम है। वह देखें कि उनके वैज्ञानिक संस्थानों और राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं में हो क्या रहा है?

■ निरंकार सिंह

वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की संख्या की दृष्टि से भारत दुनिया का तीसरा सबसे बड़ा देश है, लेकिन विज्ञान और तकनीक के मामले में यह काफी पिछड़ा है। खुद प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह भी विज्ञान कांग्रेस के 99वें अधिवेशन में भारत के चीन से पिछड़ने पर चिंता जाहिर कर चुके हैं। गत 2 जून को कोलकाता में विज्ञान कांग्रेस के शताब्दी समारोह के उद्घाटन समारोह में एक बार फिर उन्होंने देश की वैज्ञानिक प्रगति पर असंतोष जताया।

मनमोहन सिंह वैज्ञानिक अनुसंधान पर खर्च एक फीसदी से बढ़ाकर दो फीसदी करना चाहते हैं। पर खर्च बढ़ा देने से ही देश में विज्ञान का विकास नहीं हो जाएगा। इसके लिए देश में वैज्ञानिक शोध और आविष्कार का माहौल बनाना होगा। हमारे तमाम वैज्ञानिक विदेश चले जाते हैं।

पिछली विज्ञान कांग्रेस के अधिवेशन में उन्होंने विदेशों में काम कर रहे भारतीय वैज्ञानिकों से देश लौटने की भी अपील की थी, पर वे नहीं लौटे। हमारे वैज्ञानिक विदेश जाते ही क्यों हैं? इसका जवाब दो साल पहले रसायन में संयुक्त रूप से नोबल पुरस्कार प्राप्त करने वाले भारतीय मूल के वैज्ञानिक वेंकट रमन रामकृष्णन ने दिया था।

उन्होंने कहा था कि भारतीय वैज्ञानिकों को लालफीताशाही से मुक्ति और अधिक स्वायत्तता की जरूरत है। देश के वैज्ञानिक संस्थान और राष्ट्रीय प्रयोगशालाएं जब तक नौकरशाही के चंगुल और भाई–भतीजावाद से ग्रस्त रहेंगी, भारत में नए विज्ञान और तकनीक के विकास का रास्ता नहीं खुल सकता है।

देश में वैज्ञानिक खोज और आविष्कार के लिए उपयुक्त माहौल बनाना सरकार और खासकर प्रधानमंत्री का ही काम है। वह देखें कि उनके वैज्ञानिक संस्थानों और राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं में हो क्या रहा है?

आखिरकार विकास की प्रक्रिया समाज में ही तो शुरू होती है और जब एक बार विकास शुरू हो जाता है तो समाज भी बदलने लगता है तो फिर क्यों न हम अन्य देशों के साथ भारत की तुलना करके देखें कि विकास आखिर किस दिशा में हुआ है। अत्याधुनिक पश्चिम में जो आज विज्ञान और तकनीक के मामले में सबसे आगे हैं, वे इतना आगे कैसे बढ़ गए? अगर ध्यान से देखा जाए तो पश्चिमी देशों की परिस्थितियां इतनी अनुकूल थीं कि वैज्ञानिक विकास जरूरी हो गया था।

दौलत आसमान से नहीं टपकती। इसलिए देश की आजादी के बाद नेहरू और भाभा ने कहा था कि हम विज्ञान और तकनीक के माध्यम से अपना खाद्यान्न और औद्योगिक उत्पादन बढ़ाकर देश को आत्मनिर्भर बना सकते हैं। इन दोनों व्यक्तियों के प्रयास से आज हमारे पास तकनीक और अनुसंधान के विकास के लिए आधारभूत ढांचा तैयार है।

अंतरिक्ष, परमाणु मिसाइल के क्षेत्र में कुछ हमारी उपलब्धियां भी हैं, लेकिन दुनिया को बताने लायक हमने कोई नई खोज और आविष्कार नहीं किया है। वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की संख्या के हिसाब से भारत का दुनिया में तीसरा स्थान है, लेकिन सारा का सारा वैज्ञानिक साहित्य पश्चिमी देश के वैज्ञानिकों के कार्यों से भरा पड़ा है। उसमें किसी भारतीय का नाम नहीं मिलता है। अपने देश में आज कोई रामन, खुराना क्यों नहीं है? इतने सारे वैज्ञानिक संस्थानों में लगे हुए ढेरों वैज्ञानिक किस पशोपेश में है। वे कुछ करते हैं, उसे मान्यता नहीं मिलती या वे कुछ कर ही नहीं रहे हैं?

क्या हमारे देश में वैज्ञानिक प्रगति के लिए उपयुक्त वातावरण नहीं है? क्या यह हालत काफी समय से है? दरअसल, सात–आठ दशक पहले ऐसा नहीं था।

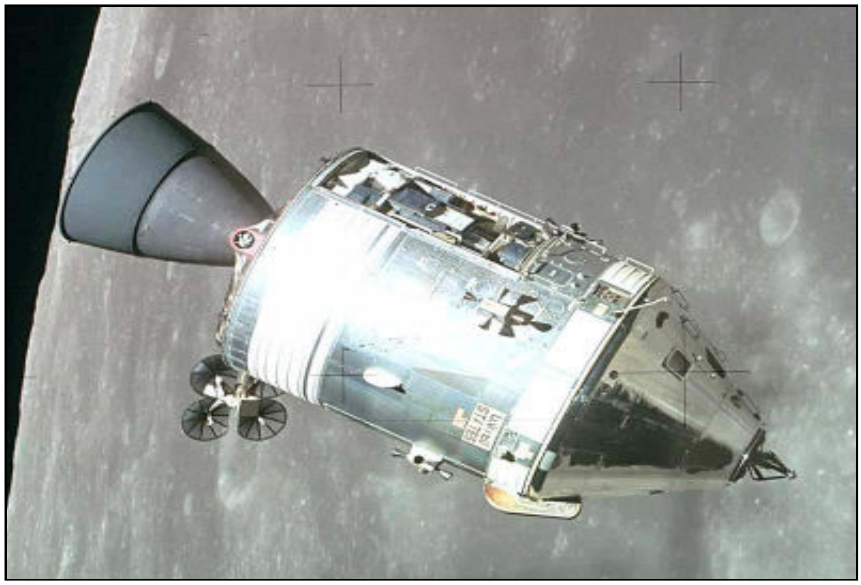

ब्रिटिश राज्य में तकलीफें कम नहीं थीं। परिस्थितियां एकदम प्रतिकूल थीं। इसके बावजूद भारत ने बड़े–बड़े वैज्ञानिक पैदा किए। रामानुजम, जगदीश चंद्र बोस, चंद्र शेखर वेंकट रामन, मेघनाद साहा और सत्येन्द्र नाथ बोस सरीखे वैज्ञानिकों ने भारत में ही काम किया था और दुनिया में भारत का गौरव बढ़ाया था। लेकिन आजादी के बाद हम एक भी अंतरराष्ट्रीय स्तर का वैज्ञानिक देश में पैदा नहीं कर सके? इस बारे में क्या कभी हमने सोचा है? दुनिया में अब वैज्ञानिक और तकनीकी ज्ञान आर्थिक स्रोत के उपकरण बन गए हैं। किसी भी देश की वैज्ञानिक और तकनीकी क्षमता उसकी आर्थिक प्रगति का पैमाना बन चुकी है। तकनीकी ज्ञान अब व्यापार के हथियार बन चुके हैं। इसलिए विज्ञान और तकनीक के विकास के बिना अब किसी देश की प्रगति नहीं हो सकती है।

अब सवाल इस बात का है कि क्या हमारी आधुनिक सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक प्रणाली में कोई ऐसी खामी है, जो भारतीय भूमि पर विज्ञान और तकनीक को पल्लवित नहीं होने देती है? वास्तव में समाज ही वह ताकत है, जो यह निश्चित कर सकती है कि विज्ञान और तकनीक को किस दिशा में आगे बढ़ना है।

आखिरकार विकास की प्रक्रिया समाज में ही तो शुरू होती है और जब एक बार विकास शुरू हो जाता है तो समाज भी बदलने लगता है तो फिर क्यों न हम अन्य देशों के साथ भारत की तुलना करके देखें कि विकास आखिर किस दिशा में हुआ है। अत्याधुनिक पश्चिम में जो आज विज्ञान और तकनीक के मामले में सबसे आगे हैं, वे इतना आगे कैसे बढ़ गए? अगर ध्यान से देखा जाए तो पश्चिमी देशों की परिस्थितियां इतनी अनुकूल थीं कि वैज्ञानिक विकास जरूरी हो गया था।

अंतरिक्ष, परमाणु मिसाइल के क्षेत्र में कुछ हमारी उपलब्धियां भी हैं, लेकिन दुनिया को बताने लायक हमने कोई नई खोज और आविष्कार नहीं किया है। वैज्ञानिकों और इंजीनियरों की संख्या के हिसाब से भारत का दुनिया में तीसरा स्थान है, लेकिन सारा का सारा वैज्ञानिक साहित्य पश्चिमी देश के वैज्ञानिकों के कार्यों से भरा पड़ा है। उसमें किसी भारतीय का नाम नहीं मिलता है। अपने देश में आज कोई रामन, खुराना क्यों नहीं है? इतने सारे वैज्ञानिक संस्थानों में लगे हुए ढेरों वैज्ञानिक किस पशोपेश में है। वे कुछ करते हैं, उसे मान्यता नहीं मिलती या वे कुछ कर ही नहीं रहे हैं?

आजादी की खुशहाली के आलम में लोग साहसिक यात्राओं पर निकलने लगे। विभिन्न जातियों, रीति–रिवाजों और राजनीतिक प्रणालियों के लोगों से मेलजोल के कारण दिमाग पूरी तरह काम करने लगा। उनका संपर्क दुनिया में कुछ नया खोजने वाले कारीगरों से हुआ। धीरे–धीरे पुराने विश्वास, आदतें और सामाजिक मूल्य बदलने लगे। विकास की एक नई प्रक्रिया शुरू हो गई। उत्पादन के तौर–तरीकों और परिवहन के साधनों में सुधार की मांग तेजी से बढ़ती जा रही थी। उस समय युद्ध भी हो रहे थे। युद्ध में विजय के लिए जरूरी था कि नए से नए साधनों का उपयोग। अत्याधुनिक चीजें हासिल करने का जोर उमड़ पड़ा और खोजबीन तेजी से होने लगी।

किसी भी दूसरे देश ने वैज्ञानिक विकास के लिए ऐसी जमीन नहीं दी जैसी पश्चिम यूरोप और अमेरिका ने। इस नई वैज्ञानिक संस्कृति के लाभ साफ दिखाई दे रहे थे। यही वजह है कि कुछ और देशों ने इसे अपना लिया। इसे सबसे पहले जापानियों ने अपनाया। आज वह कहां खड़ा है, हम सभी जानते हैं। जापान की ही तरह रूस और चीन ने भी वैज्ञानिक शिक्षा के लिए जापान की तरह अपनी मातृभाषा को आधार बनाया। योजनाबद्ध विकास के सिद्धांत को रूस ने लागू किया। नौकरशाही और लाल फीताशाही को खत्म करने के लिए नए–नए तौर तरीके अपनाए।

हम सभी जानते हैं। जापान की ही तरह रूस और चीन ने भी वैज्ञानिक शिक्षा के लिए जापान की तरह अपनी मातृभाषा को आधार बनाया। योजनाबद्ध विकास के सिद्धांत को रूस ने लागू किया। नौकरशाही और लाल फीताशाही को खत्म करने के लिए नए–नए तौर तरीके अपनाए।

पुराने दकियानूसी समाज के स्थान पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण वाले नए समाज की स्थापना पर जोर दिया गया। शिक्षा उत्पादन की जरूरतों के हिसाब से दी जाने लगी। सामाजिक अनुशासन, कड़ी मेहनत और समस्याओं से जूझने की विश्लेषणात्मक विधि पर जोर दिया जाने लगा। जो लोग इन गुणों को अपना लेते थे, उनका सम्मान किया जाता था। इस तरह धीरे–धीरे नए मूल्य बन गए। इन बातों को इतना विस्तार से इसलिए बताया गया है कि हमने इन देशों के तरीके नहीं अपनाए।

हालांकि मूल समस्याएं गरीबी, निरक्षरता तथा परंपराएं इन देशों में जैसी थी, वैसी ही हमारे देश में भी हैं। लेकिन भारतीय जाति व्यवस्था और ब्रिटिश शासन से ये समस्याएं और जटिल हो गई हैं। लेकिन पिछले 50 साल में चीन ने जो कुछ कर दिखाया, उससे लगता है कि ऐसा कुछ नहीं है, जो संभव न हो। ❑

:: सूचना ::

स्वदेशी पत्रिका सम्राज्यवाद के खिलाफ एक सशक्त आवाज है। पत्रिका को ऐसे लोगों से प्रतिक्रियाएं, रिपोर्ट या आलेख की अपेक्षा है जो राष्ट्रहित में सोचते हैं और देश के स्वावलम्बन के लिए कुछ करने की इच्छा रखते है। जरूरी नहीं कि आप पत्रकार या लेखक ही हों, अपने आसपास से जुड़ी चीजों के प्रति आपकी संवदेना है और आप शब्दों में उसे लिख सकते है तो हमें अवश्य लिख भेजें। साथ ही स्वदेशी पत्रिका में छपे लेख आपको कैसे लगते हैं, क्या आप इसमें कुछ नए विषयों का समायोजन चाहते हैं कृपया हमें अवश्य अवगत कराएं। आपके विचारों को हम प्राथमिकता के साथ प्रकाशित करने का भी प्रयास करेंगे।

हमारा पता है :–

संपादक

स्वदेशी पत्रिका

'धर्मक्षेत्र', सेक्टर–8, बाबू गेनू मार्ग, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली–110022

ऐसा भविष्य जो हम नहीं चाहते

हम मानते हैं कि धरती और इसकी पारिस्थितिकी हमारा घर है और कई देशों और क्षेत्रों में धरती को मां कहा जाता है, और हम इस बात को भी ध्यान में रखें कि कई देशों का मानना है कि सतत विकास को बढ़ावा देकर ही प्रकृति के अधिकारों की रक्षा की जा सकती है। हम मानते हैं कि वर्तमान और भावी पीढ़ी की आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय जरूरतों में संतुलन स्थापित करने के लिए जरूरी है कि हम प्रकृति के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार करें।

■ वंदना शिवा

ब्राजील का शहर रियो डे जेनेरियो यू टर्न के लिए मशहूर है। रियो+20 सम्मेलन ने भी इसी का अनुकरण किया है, जो धरती के जीवन को बचाए रखने की मानवीय जिम्मेदारी से पलटने का सबसे बड़ा उदाहरण था। बीस वर्ष पहले पृथ्वी सम्मेलन में जैव–विविधता के संरक्षण एवं विनाशकारी जलवायु परिवर्तन की रोकथाम के लिए कानूनी रूप से एक बाध्यकारी समझौते पर दस्तखत किए गए थे।

जैव–विविधता पर सम्मेलन और जलवायु परिवर्तन पर संयुक्त राष्ट्र के ढांचागत समझौते ने सरकारों को हमारे समय के दो सबसे बड़े पारिस्थितिकी संकट से निपटने के लिए घरेलू स्तर पर कानून और नीतियां बनाने के लिए प्रेरित किया।

रियो+20 सम्मेलन का एजेंडा तो यह होना चाहिए था कि रियो संधि का क्रियान्वयन अधूरा क्यों रह गया। इसमें पारिस्थितिकी संकट के गहराने से संबंधित रिपोर्ट पेश करने के साथ ही कानूनी रूप से बाध्यकारी कदम उठाने की जरूरत थी, ताकि यह संकट खतरनाक स्तर पर न पहुंच जाए। पर सम्मेलन में पूरी शक्ति इस पर लगा दी गई कि किसी भी तरह की प्रतिबद्धता से बचा जाए। यह सम्मेलन अपनी उपलब्धियों के बजाय इस गंभीर संकट पर ठोस कदम उठाने में नाकाम रहने की वजह से याद किया जाएगा। इसे 'हरित अर्थव्यवस्था' के नाम पर विफल अर्थव्यवस्था वाले राष्ट्रों को खैरात बांटने के लिए याद किया जाएगा।

क्या विडंबना है, प्रकृति को पण्य वस्तु में बदलने और उसका वित्तीयकरण करने को हरित अर्थव्यवस्था का नाम दिया गया है। वर्ष 2008 में वॉल स्ट्रीट में ध्वस्त होने और करदाताओं के अरबों डॉलर के खैरात से नया जीवन पाने वाली और अब भी मितव्ययिता के जरिये लोगों का जीवन निचोड़कर खैरात हासिल करने वाली वित्तीय व्यवस्था खुद को धरती के उद्धारक के रूप में पेश कर रही है।

क्या विडंबना है, प्रकृति को पण्य वस्तु में बदलने और उसका वित्तीयकरण करने को हरित अर्थव्यवस्था का नाम दिया गया है। वर्ष 2008 में वॉल स्ट्रीट में ध्वस्त होने और करदाताओं के अरबों डॉलर के खैरात से नया जीवन पाने वाली और अब भी मितव्ययिता के जरिये लोगों का जीवन निचोड़कर खैरात हासिल करने वाली वित्तीय व्यवस्था खुद को धरती के उद्धारक के रूप में पेश कर रही है।

हरित अर्थव्यवस्था के जरिये वस्तुतः धरती के संसाधनों और जीव–जगत को प्रौद्योगिकीकरण, वित्तीयकरण, निजीकरण

और पण्य वस्तु में बदलने की एक सुनियोजित कोशिश है। यह धरती पर कब्जा कर जीवन को खत्म करने वाली दुनिया और प्रकृति के साथ सौहार्द स्थापित करने वाली एवं धरती माता के अधिकारों को मान्यता देने वाली दुनिया के बीच की आखिरी लड़ाई है। धरती माता के अधिकारों के सार्वभौमिक घोषणापत्र पर एक लाख भारतीयों का हस्ताक्षर करवा कर मैंने संयुक्त राष्ट्र के महासचिव बान की मून को सौंपा था।

यह हमारे आंदोलनों की दृढ़ता और शक्ति का ही परिचायक है कि जब हरित अर्थव्यवस्था संबंधी टिप्पणी को अंतिम रूप दिया जा रहा था, तब उसमें धरती माता और प्रकृति के अधिकारों से संबंधित एक अनुच्छेद भी रखा गया।

अनुच्छेद 39 कहता है, हम मानते हैं कि धरती और इसकी पारिस्थितिकी हमारा घर है और कई देशों और क्षेत्रों में धरती को मां कहा जाता है, और हम इस बात को भी ध्यान में रखें कि कई देशों का मानना है कि सतत विकास को बढ़ावा देकर ही प्रकृति के अधिकारों की रक्षा की जा सकती है। हम मानते हैं कि वर्तमान और भावी पीढ़ी की आर्थिक, सामाजिक एवं पर्यावरणीय जरूरतों में संतुलन स्थापित करने के लिए जरूरी है कि हम प्रकृति के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार करें।

यह वास्तव में प्रभुत्व के संघर्ष का उदाहरण है, जो रियो+20 सम्मेलन पर छाया रहा। एक तरफ हरित अर्थव्यवस्था की वकालत करने वाले लालची लोग थे,

वहीं दूसरी तरफ धरती माता के अधिकारों की बात करने वाले लोग। जब रियो +20 सम्मेलन का उद्देश्य पीछे चला गया, तब कुछ देशों की सरकारें एक नया प्रतिमान और नजरिये के साथ आगे आईं। इक्वाडोर पहला ऐसा राष्ट्र है, जिसने अपने संविधान में प्रकृति के अधिकारों को शामिल किया है। रियो +20 सम्मेलन के दौरान इक्वाडोर की सरकार ने मुझे यासुनी पहल की घोषणा के वक्त राष्ट्रपति के साथ रहने के लिए आमंत्रित किया। दरअसल वहां की सरकार ने अमेजन के जंगल और स्थानीय समुदायों को बचाने के लिए यासुनी नेशनल पार्क के पास कच्चे तेल का अंधाधुंध दोहन न करने का फैसला किया है।

दूसरा उदाहरण हमारे छोटे–से पड़ोसी देश भूटान ने पेश किया। उसने अपनी प्रगति निर्धारित करने के लिए सकल घरेलू उत्पाद के बजाय सकल राष्ट्रीय खुशहाली का मानदंड अपनाया है। वहां की सरकार ने जैविक खेती को मान्यता दी है। जैसा कि भूटान के प्रधानमंत्री ने सम्मेलन में बताया, भूटान की शाही सरकार जैविक खेती पर वापस लौटने के साझा स्वप्न को साकार करने के लिए चलने वाले वैश्विक आंदोलन को लगातार बढ़ावा देगी, जिससे फसल और धरती, दोनों टिकाऊ बनी रहे। ज्यादातर देशों की सरकारें रियो +20 सम्मेलन के परिणाम से निराश थीं। आंदोलनकारियों ने नाराज होकर विरोध–प्रदर्शन भी किया। एक लाख से ज्यादा लोगों ने यह कहते हुए मार्च किया कि यह वह भविष्य कतई नहीं है, जो हम चाहते हैं। उल्लेखनीय है कि रियो +20 सम्मेलन का शीर्षक था– भविष्य, जो हम चाहते हैं।

रियो +20 सम्मेलन का उद्देश्य पूरा नहीं हुआ। हमारी सामूहिक इच्छाशक्ति और कार्रवाई ही तय करेगी कि पानी की अंतिम बूंद, घास की आखिरी पत्ती, जमीन का आखिरी टुकड़ा और अंतिम बीज का निजीकरण करने में कॉरपोरेट जगत सफल होंगे या धरती पर मानव जीवन समेत इसकी समुद्ध विविधता को बचाने में हम सक्षम हो सकेंगे। ❑

ज्यादातर देशों की सरकारें रियो +20 सम्मेलन के परिणाम से निराश थीं। आंदोलनकारियों ने नाराज होकर विरोध–प्रदर्शन भी किया। एक लाख से ज्यादा लोगों ने यह कहते हुए मार्च किया कि यह वह भविष्य कतई नहीं है, जो हम चाहते हैं।

लेख

परीक्षित कथा की प्रासंगिकता

राजा (शासक) और स्वर्ण (धन/वित्त) सदा अभीष्ट नहीं होता। इसके दुष्प्रभाव अकल्पनीय नहीं। शासन का झुकाव जन–सुरक्षा की अपेक्षा और प्रशासनिक की ओर कम और धनोपार्जन पर अधिक दिखाई देता है। और साथ ही यह भी निश्चित है कि जहां वित्तीय आदान–प्रदान या व्यावसायिक क्रिया–कलाप होंगे, वहां धन–संबंधी गड़बड़ी या उसकी आशंका देखी जाती है। पिछले दिनों देश में भ्रष्टाचार के अनेकों मामले उजागर हुए, चाहे खेलों का आयोजन हो या खदानों से संबंधित हो या संचार साधनों का उपयोग–वितरण हो या व्यावसायिक उद्यम हो या भूमि प्रबंधन हो।

■ डॉ. ब्रह्मा भारद्वाज

महाभारत में एक कथा है परीक्षित की। परीक्षित अर्जुन के पौत्र और पाण्डवों के उत्तराधिकारी थे। परीक्षित की कथा का कुछ विस्तार श्रीमदभागवत में हुआ है। श्रीकृष्ण के महाप्रयाण के साथ–साथ द्वापर युग का अंत और कलियुग का प्रारंभ हुआ। श्रीमदभागवत के अनुसार एक दिन राजा परीक्षित प्रजा का दुःख दर्द जानने के लिए राज्य का भ्रमण कर रहे थे। उन्होंने देखा कि एक व्यक्ति गाय को ठोकर मार रहा है। उन्होंने यह भी देखा कि एक व्यक्ति गाय को ठोकर मार रहा है। उन्होंने यह भी देखा कि एक बैल मात्र एक पैर से खड़ा है, उसकी तीन टाँग टूट चुकी हैं।

यहां गाय पृथ्वी–भूमि का प्रतीक है और बैल धर्म, नियम–अनुशासन का। गाय को ठोकर मारना उसका दुरुपयोग है, और ठोकर मारने वाला भूमि का दुरुपयोग करने वाला है। यह प्रतीकात्मक है। धर्म के चार चरण हैं :– तप, पवित्रता, दया और सत्य। इसके विपरीत अधर्म के तीन घटक हैं :– गर्व, आसक्ति और मद। इस अधर्म से तप, पवित्रता और दय का ह्रास हो जाता है। यही नहीं अधर्म प्रेरित व्यक्ति ''राजा का स्वांग'' रचकर पृथ्वी पर शासन करते हैं।

श्रीमदभागवत मं कलि के जो निवास स्थान बताए हैं, वे हैं :– द्यूत, मद्यपान, स्त्रीसंग और हिंसा। इनकी वैकल्पिक संज्ञा हैं :–असत्य, मद, आसक्ति और निर्दयता। इन चार स्थानों के अतिरिक्त एक और स्थान है – स्वर्ण या धन।

श्रीमदभागवत का कथानक है कि एक दिन परीक्षित मृगया के लिए निकले हुए थे। उन्हें जल की इच्छा हुई। वे पानी पीना चाहते थे। ढूँढते–ढूँढते वे एक ऋषि–शमीक मुनि के आश्रम में पहुँचे। राजा ने उनसे जल माँगा। पर क्योंकि मुनि ध्यानस्थ थे, उन्होंने याचना नहीं सुनी। राजा परीक्षित को क्रोध आ गया। उन्होंने वहां पड़े हुए एक मरे हुए सर्प को धनुष की नोक से उठा कर ध्यानस्थ मुनि के गले में डाल दिया। और फिर वहां से चले गए। यहां यह उल्लेखनीय है कि उस समय राजा परीक्षित स्वर्ण निर्मित मुकुट धारण किए हुए थे। अर्थात् उन पर कलि का प्रभाव था। ऋषि कुमार को क्रोध आ गया और उन्होंने शाप दिया कि राजा इस कुकृत्य के कारण सात दिन बाद वासुकी नाग द्वारा डस लिए जाने के कारण मृत्यु को प्राप्त होगा। यद्यपि ऋषि ने इस वचन का अनुमोदन नहीं किया, पर ऋषि कुमार की वाणी सत्य हो गयी।

इसी परीक्षित कथानक के कुछ सार निकर्ष इस प्रकार हैं :–

(1) श्रीकृष्ण के महाप्रयाग के बाद कलियुग का आरंभ और द्वापर का अंत हुआ।

स्वर्ण धन राजा (शासक) और जनता दोनों का आच्छादित किए रहता है। प्रायः सभी बुराइयों का मूल स्वर्ण (धन) होता है। असत्य, मद, आसक्ति, हिंसा, निर्दयता आदि का प्रसार होता है।

(2) कलि युग में मनुष्यों की मनोवृत्ति उदार सार्वभौम न रहकर, संकीर्ण 'स्व केन्द्रित' हो जाती है।

(3) व्यक्ति (और समाज) उदारमना नहीं रहता। वह स्वार्थपरक हो जाता है। उसके लिए उसका हित सर्वोपरि होता है। परार्थ और समाज की चिंता नहीं होती।

(4) इसी प्रकार कुछ और गुण भी पनपते हैं। उनमें विशेष हैं :– अहंकार, आसक्ति। गर्व की वृद्धि भी होती है। परिणामतः तप, सत्य, दया आदि गुणों को लोप या ह्रास हो जाता है।

(5) और जब ये गुण व्यक्ति विशेष या सीमित वर्ग से निकल कर वृहद समाज में व्याप्त हो जाते हैं, तब कलियुग का प्रचंड रूप दिखाई देता है।

कलि का आश्रय

कलि का आश्रय स्वर्ण है। विस्तृत रूप में स्वर्ग का अर्थ धन–सम्पत्ति है। इसी संदर्भ में आचार्य विष्णुगुप्त की एक उक्ति है कि जिस प्रकार जब मधु को एक पात्र से दूसरे में डालते है तो दूसरे में वह पूरा नहीं जाता, कम हो जाता है। उसी प्रकार जब धन एक व्यक्ति से दूसरे के पास जाता है तो वह भी पूरा नहीं, कम पहुंचता है। और जितने माध्यमों से धन चलेगा कम होता जाएगा। इसी प्रकार की कुछ उक्ति स्व. राजीव गांधी की भी थी ''जब हम किसी को सरकारी तंत्र के माध्यम से दस रुपए भेजते हैं तो प्राप्तकर्त्ता को मात्र एक रुपया ही मिलता है।'' यह एक चाणक्य के कथन का ही समर्थन है। और जब शासन एवं शासक वाणिज्यिक क्रिया–कलापों में लिप्त होगा, तब इस प्रशासनिक विकार का आकार कई गुणा बढ़ जाता है। इसके आयाम भी बहुत होते हैं।

राजा और स्वर्ण (धन) का योग

राजा (शासक) और स्वर्ण (धन/वित्त) सदा अभीष्ट नहीं होता। इसके दुष्प्रभाव अकल्पनीय नहीं। शासन का झुकाव जन–सुरक्षा की अपेक्षा और प्रशासनिक की ओर कम और धनोपार्जन पर अधिक दिखाई देता है। और साथ ही यह भी निश्चित है कि जहां वित्तीय आदान–प्रदान या व्यावसायिक क्रिया–कलाप होंगे, वहां धन–संबंधी गड़बड़ी या उसकी आशंका देखी जाती है। पिछले दिनों देश में भ्रष्टाचार के अनेकों मामले उजागर हुए, चाहे खेलों का आयोजन हो या खदानों से संबंधित हो या संचार साधनों का उपयोग–वितरण हो या व्यावसायिक उद्यम हो या भूमि प्रबंधन हो। निजी व्यवसाय के साथ भी सरकारी कर्मचारियों की साँठ–गाँठ और परस्पर आदान–प्रदान प्रायः सर्वत्र देखा जाता है।

राजकीय नियंत्रण और राजकीय संचालन

राजकीय नियंत्रण और राजकीय संचालन में भी अंतर है। यद्यपि दोनों में ही धन–लोभ आकर्षित करता है पर एक में निवेश वैयक्तिक है और दूसरे में सरकारी पूँजी या कराधान द्वारा प्राप्त जनता का धन। एक अन्य अंतर यह भी है कि संकट के समय एक ओर वैयक्तिक निवेश है तो दूसरी ओर सहज उपलब्ध सरकारी कोष। यदि एक को वित्त व्यय प्रबंधन में अत्यंत सावधानी एवं मितव्यय देखा जाता है तो दूसरी ओर राजकीय उद्योगों को इसकी चिंता नहीं। यदि 'किंग फिशर' बन्द होने के कगार पर है तो इंडियन एयर लाइंस को चिंता नहीं। यद्यपि दोनों ही एक सी समस्या से ग्रस्त हैं। शासकीय उद्यम के पास शासकीय दण्ड के साथ–साथ शासकीय वित्तकोष भी है।

राजकीय उद्योगों के माध्यम से शासक प्रशासनिक राजा कम, व्यावसायिक–वैश्य अधिक हो जाता है। और राजा के 'समदृष्टि व्यवहार को 'लोभ' आच्छादित किए रहता है। और परिणामतः समाज में अव्यवस्था फैलती है। सरकारी उद्यमों द्वारा अर्जित लाभांश अप्रत्यक्ष कराधान ही है। आय से अधिक व्यय अर्थात् व्यवसाय में हानि का बोझ भी करदाता को ही उठाना पड़ता है। लाभ हो या हानि दोनों ही स्थितियों में भार जन–साधारण पर ही पड़ता है। जहां व्यवसाय में अनियमितता निजी क्षेत्र में कठोरता से अनुशासित होती है, वहीं सरकारी उद्यम के कर्त्ता उससे बचे रहते हैं।

सारांश

सारांश रूप में हम कुछ निष्कर्ष इस प्रकार कह सकते हैं :–

(1) गाय पृथ्वी का पर्याय है। गाय को ठोकर मारने का अर्थ है – भूमि का दुरुपयोग। इस दुरुपयोग के आयाम अनेक है।

(2) बैल धर्म का प्रतीक है। 'धर्म' का अर्थ है :– 'जो धारण किया जाए' या 'जिससे धारण किया जाए'। 'धृ' धातु से निस्सृत धर्म का अर्थ है :– 'धारण'। यह विधि व्यवस्था का पर्याय है। धर्म के आधार तत्व हैं :– तप, पवित्रता, दया और सत्य। गर्व, आसक्ति, मद, अहंकार से धर्म की हानि होती है।

(3) कलि काल में उपर्युक्त दोनों तत्वों का ह्रास हो जाता है। स्वर्ण धन राजा (शासक) और जनता दोनों का आच्छादित किए रहता है। प्रायः सभी बुराइयों का मूल स्वर्ण (धन) होता है। असत्य, मद, आसक्ति, हिंसा, निर्दयता आदि का प्रसार होता है। ❑

कांवड़ियों ने ठानी है - गंगा मैया बचानी है

भगीरथ गंगा लेकर आए यह शुभ काम उन्होंने अपने पुरखों को तर्पण करके सबके हित में साझे भविष्य के लिए किया था। गंगा में स्नान नीजि के पाप धोने का भाव माना जाता है। पाप धोने से गंगा मैली नहीं हुई। कचरा ढोने से मालगाड़ी बन गई। कचरा डालने का काम उद्योगों ने किया। इसने गंगा की पवित्रता नष्ट करी। अब कांवड़ को पर्यटन उद्योग में बदलना ही उत्तराखण्ड सरकार की तीर्थ को पर्यटन उद्योग बनाने की हठधर्मिता है। हिमाचल, हरियाणा और उत्तर प्रदेश की सरकार और इनके आला अफसल इतने अड़ियल दिखाई नहीं दिए। उत्तराखण्ड सरकार ही संस्कार को व्यापार में बदलना चाहती है। यह भी गंगा के साथ भ्रष्टाचार को जन्म देगा।

■ **राजेन्द्र सिंह**

कांवड़ पर्व, इस वर्ष का यह पर्व पहले से अलग होगा। कांवड़िये हरिद्वार से प्रदूषित जल लेकर अपने पुरखों, ईष्ट देवताओं को नहीं चढ़ाएंगे। क्योंकि उत्तराखण्ड सरकार ने कांवड़ को पर्यटन श्रेणी में दर्ज कर दिया है। गंगा जी की दोनों भुजाओं भगीरथी, अलकनन्दा को बांधों से बांध दिया है।

भगीरथी का टिहरी में रूका जल हरे रंग का हो गया है। इसमें अलगाई पैदा हो गई है। परिणामस्वरूप इसका रंग बदल चुका है। भगीरथी की भभूति टिहरी बांध में बैठ गई है। हिमालय की भभूति में ही वह विशिष्ठ जल गुण होता था। वह अब नीचे बैठ गया है। अलकनन्दा पर बन रहा श्रीनगर बांध भी टिहरी की तरह ही इसके जल की भभूति को अपने में समेटकर नीचे बैठा देगा। इसलिए कांवड़ियों ने तय किया है। शिव भभूति को कांवड़ में लाने हेतु श्रीनगर बांध नहीं बनने देंगे।

'कांवड़' संस्कृति को पर्यटन में बदलना आज की सभ्यता है। उत्तराखण्ड सरकार ने कांवड़ियों को पर्यटक बनाने के सभी इंतजाम कर दिए। कांवड़ तो गंगामृत (ब्रह्मदृव्य) को अपने कंधे पर लाकर अपने इष्ट पुरखों को चढ़ाकर पुण्य कमाने की परम्परा है। यह भगीरथ जैसी ही शुभ कार्य है। सरकारों को भी इसका शुभ ही सोचना चाहिए।

सरकारें केवल लाभ के लिए ही विचार करती है। शुभ का विचार नहीं करती है। शुभ साझे सुधार के काम से होता है। पाप धोना निजि काम है। पुण्य कमाना साझा ही है। शुभ, कर्म की करामात से बनता है। गंगामृत को बचाना भी शुभकर्म है। इसलिए कांवड़ियों ने श्रीनगर बांध रद्द कराने वाला काम तय किया है।

भगीरथ गंगा लेकर आए यह शुभ काम उन्होंने अपने पुरखों को तर्पण करके सबके हित में साझे भविष्य के लिए किया था। गंगा में स्नान नीजि के पाप धोने का भाव माना जाता है। पाप धोने से गंगा मैली नहीं हुई। कचरा ढोने से मालगाड़ी बन

सरकार कांवड़ियों को पर्यटक कहकर उनका अपमान करना चाहती है। "गंगा हमारे पुरखों ने हमें सौंपी, वैसी हम अपनी अगली पीढ़ी को सौपेंगे।" अब कांवड़ियें संकल्प ले रहे हैं। हर कांवड़िया भटवाड़ी श्रीनगर बांध का विरोध करके अपने देवता को कांवड़ चढ़ाएंगे। श्रीनगर बांध के काम को रद्द कराना भगवान शिव को अर्ध्य देने जैसा ही है।

गई। कचरा डालने का काम उद्योगों ने किया। इसने गंगा की पवित्रता नष्ट करी। अब कांवड़ को पर्यटन उद्योग में बदलना ही उत्तराखण्ड सरकार की तीर्थ को पर्यटन उद्योग बनाने की हठधर्मिता है। हिमाचल, हरियाणा और उत्तर प्रदेश की सरकार और इनके आला अफसल इतने अड़ियल दिखाई नहीं दिए। उत्तराखण्ड सरकार ही संस्कार को व्यापार में बदलना चाहती है। यह भी गंगा के साथ भ्रष्टाचार को जन्म देगा।

उत्तराखण्ड सरकार को गंगा मां का शोषण ही दिखाई देता है। गंगा मां का दोहन करना तो उचित है। लेकिन यह सरकार केवल शोषण करने पर तुली हुई है। शोषण हमारी नई सभ्यता में जन्मा है। पर्यटन हमारी सभ्यता ही है। सरकार अब गंगा शोषण के काम में ज्यादा जुटी दिखाई

हिमालय दाता–गंगा माता, कांवड़ियों से नाता

गुरु कृपा से हरिद्वार में गंगा घाट पर कांवड़ियों ने मिलकर अपनी आवाज गूंजाई है। ''कांवड़ियों ने ठाना है – गंगा हमें बचाना है।'' कांवड़ियों की यह आवाज देहरादून और दिल्ली जरूर पहुंचेगी। दिल्ली–देहरादून ने इनकी आवाज को नहीं सुना तो ये 2014 के चुनाव में गंगा की मत शक्ति दिखाएंगे।

गंगा पर अब आगे कोई बांध नहीं बनेगा। अभी भारत सरकार को यह समझ में आने लगा है। ऐसा संकल्प प्रधानमंत्री जी की तरफ से बनारस में माननीय श्री जयप्रकाश जयसवाल जी ने श्री शंकराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी को सुनाया। इससे गंगा तपस्वियों ने अपनी तपस्या की व्रीवता घटा दी है।

31 अक्तूबर, 2012 तक राष्ट्रीय नदी गंगा बेसिन प्राधिकरण निर्माणाधीन बांधों को भी स्थाई रूप से रद्द करा सका तो अच्छा होगा। यदि ऐसा नहीं हुआ तो 25 नवम्बर, 2012 से दिल्ली में भारत की सरकारों के विरूद्ध संग्राम शुरू होगा। हम सब राष्ट्र प्रेमी गंगा भक्त 4 जुलाई, 2012 गुरु पूर्णिमा आज से ही गंगा मुक्ति संग्राम की तैयारी में जुटे हैं।

भारत सरकार का अन्तर मंत्रालयी समूह को तीन माह का समय दिया गया है। अब इस समूह की जल्दी बैठक आयोजित करके अपना कार्य पूरा करना चाहिए। वैसे तो भगीरथी नदी का प्रवाह का अनुभव हमारे पास है। उसी आधार पर अलकनन्दा के बांधों को भी रद्द करना ही होगा। माननीय प्रधानमंत्री जी, जो कि गंगा बेसिन प्राधिकरण के अध्यक्ष भी हैं। उनकी सहमति से आगे गंगा पर कोई निर्माण नहीं होगा, ऐसा आशय पत्र 29 जून, 2012 को श्री प्रकाश जयसवाल, शंकराचार्य श्री को सौंप ही चुके हैं। यह आशय जब भविष्य के गंगा पर बांध काम रोकता है। तो निर्माणाधीन कार्यों को भी रोकने का निर्देश पैदा करता है। अन्तर मंत्रालयी समूह इस पर गंभीरता से विचार करके वैज्ञानिक सत्य जानकर जल्दी से जल्दी निर्माणाधीन कार्यों को रद्द करायेगा।

कांवड़ियों को अब स्पष्ट रूप से समझ आने लगा है। हिमालय की भभूति (सेडीमेन्ट) इसी में बायोफाज्म विशिष्ट गुण वाला अमृत होता है। इसे ही भारतीय शास्त्रों में ब्रह्मदृव्य कहा जाता है। कांवड़ियों का ब्रह्मदृव्य बचाने वाला आन्दोलन सरकारों के लिए भारी होगा। अतः समय रहते सरकारों को संघर्ष की संभावनाओं को समाप्त करना अच्छा होता है। भारत सरकार ने ब्रह्मदृव्य को सुरक्षित रखने की अपनी प्रतिबद्धता दिखाई है। लेकिन शीघ्रता से गंगा का ब्रह्मदृव्य हिमालय से गंगा सागर तक जाये। ऐसा गंगा प्रबंधन किया जाये।

गंगा मैनजमैन्ट 2020 में इस विचार को संरक्षण व सम्मान प्रदान करना सरकार का दायित्व ही बनता है। इसे अन्तर मंत्रालयी समूह सुनिश्चित कराये। सरकार इसे अपनी गंगा नीति और गंगा पुनः रक्षण कानून बनाकर प्रकट कर सकती है। स्थाईत्व देने वाला क्रियान्वयन श्रीनगर कोटेश्वर, फाटा ब्योम, भटवाड़ी, विष्णुगाड़ आदि निर्माणाधीन परियोजनाओं को स्थाई रूप से रद्द करने का आदेश देकर काम कर रही मशीनों को हटाकर सरकार भारतीय समाज को दिखा सकती है। हमें उम्मीद है कि 31 अक्तूबर, 2012 तक भारत सरकार उक्त कार्य कर दिखायेगी। तभी गंगा बचेगी। अन्यथा हिमालय दाता–गंगा माता से कांवड़ियों का नाता कहकर कांवड़ियें कभी बड़े संघर्ष को जन्म दे सकते हैं। यह संघर्ष राष्ट्रीय एकता अखण्डता का नारा देगा। जो जमीनी टूटन भी पैदा कर सकता है ? सरकार को टूटन से बचने हेतु हिमालय और गंगा को बचाने की दिशा में व्रीवता करनी चाहिए।

दे रही है। संस्कृति को शोषणकरी बनाना उचित और न्यायकारी नहीं है। 'कांवड़' भारतीय परम्परा को समृद्ध बनाती है। पर्यटन तो कुछ को भिखारी और कुछ को दातार बनाने का व्यापार बनाता है।

देव भूमि हिमालय की सरकारों ने कावड़ियों को पर्यटक कहने का मन बना लिया है। उत्तराखण्ड सरकार की पहल पर हिमाचल–हरियाणा तथा उत्तर प्रदेश सरकार 'कांवड़' परम्परा को पर्यटन में बदलकर धन कमाने का स्पष्ट संदेश देने का मन बना चुकी है। कृतज्ञता, कर्तव्य परायणता, अब सरकारों के विषय नहीं रहे हैं। सरकारों को केवल आर्थिक लाभ कमाना ही सबकुछ बन गया है।

शुभ का विचार हमारे मन से हट गया है। लाभ का विचार सरकार और समाज मिलकर करने लगा है। सरकारों को भय है। हिमालय की हरियाली और गंगा की पवित्रता बचाने वाले शुभ कार्य की मांग कांवड़ियों ने उड़ाई तो आस्था की लड़ाई सरकारों के लिए भारी पड़ेगी। इसलिए आस्था का आनंद मोजमस्ती की यात्रा में बदलने की नई साजिश शुरू की है। अब कांवड़ियों को स्वयं तय करना है। ये आस्था की यात्रा को मोजमस्ती वाला पर्यटन नाम लेना पसंद करेंगे? या कांवड़ आस्था को बनाकर रखेंगे।

भगवान शिव के प्रताप से गंगा बिना विनाश किए पृथ्वीलोक पर भगीरथ ही उतार सके थे। युग–युग तक हमें पोषित पल्लवित करती रही। भगवान शिव के प्रति इसी की कृतज्ञता जताने हेतु कभी कांवड़ परंपरा शुरू हुई। जहां गंगा नहीं है, वहां भी कांवड़ियों के कंधों पर चढ़कर गंगा का निर्मल–अविरल जल पहुंचे। यही मंतव्य है।

अब हमारा कर्तव्य है कि जैसी गंगा हमें हमारे पुरखों ने सौंपी थी, वैसी ही हम अपने अगली पीढ़ी को सौपें। लेकिन आज जैसी बीमार और बांधों में बंधी गंगा हमने बना दी है। इससे तो हम दायित्व से चूक गए इंसानों की श्रेणी में आ गए हैं। हमें अपना दायित्व याद करना होगा। हमें हमारी गंगा को उसका नैसर्गिक स्वरूप लौटाना होगा। तभी कांवड़ बच सकते हैं।

सरकार कांवड़ियों को पर्यटक कहकर उनका अपमान करना चाहती है। ''गंगा हमारे पुरखों ने हमें सौंपी, वैसी हम अपनी अगली पीढ़ी को सौपेंगे।'' गंगा का विनाश करने वाली लोहारी–नाग–पाला का काम हमेशा के लिए रद्द करा दिए। अब कांवड़ियें संकल्प ले रहे हैं। हर कांवड़िया भटवाड़ी श्रीनगर बांध का विरोध करके अपने देवता को कांवड़ चढ़ाएंगे। श्रीनगर बांध के काम को रद्द कराना भगवान शिव को अर्ध्य देने जैसा ही है।

हम गंगा को कैद नहीं रहने देंगे। हम भगवान शिव को मलीन जल नहीं स्वच्छ और अविरल गंगाजल का अर्ध्य चढ़ाएं। हम खुद भी स्वच्छ रहे और गंगा को भी स्वच्छ रखें।

अनुशासन से जीने वाला ही निडर व निर्भय होता है। कांवड़ शब्द को बरकरार रखने हेतु कांवड़ियों को अपना व्यवहार बदलना होगा। प्लास्टिक मुक्त कांवड़ का ही उपयोग करेंगे। प्लास्टिक गिलास–पत्तल आदि का बहिष्कार करेंगे। अपने मल–मूल–कचरे का त्याग गंगा नदी भूमि क्षेत्र में नहीं करेंगे। गंगा मां से जुड़े शौचालय का प्रयोग नहीं करेंगे। गंगा मैया को दूषित करने वाले उद्योग निर्मित कोई सामान नहीं खरीदेंगे। अलकनन्दा की भभूति के साथ गंगाजल गंगासागर तक पहुंचे। इसके लिए गंगा मार्ग में प्रत्येक बाधा का विरोध करेंगे।

कांवड़ के स्थान पर पर्यटन तो बिल्कुल स्वीकार नहीं है। कांवड़ियां पुण्य कमाने आता है। पर्यटक पैसा खर्च करके मौजमस्ती करने आता है। कांवड़ियां पर्यटक नहीं हो सकता है। कांवड़ियां तो कांवड़ियां ही रहेगा। शिव का आदेश, पवित्र गंगा का संदेश। हिमालय की हरियाली, गंगा की पवित्रता रक्षण का कांवड़ियों को शिव का निर्देश।

कांवड़ियों को पर्यटक बनाना स्वीकार नहीं! ❑

भू-राजनीतिक संतुलन के लिए सशक्त प्रयत्नों की आवश्यकता

भारत के चारों ओर देशों से संरक्षक व सुरक्षित जैसे संबंध बना कर चीन भारत की घेराबन्दी कर रहा है। साथ ही देश के अंदर जिस ढंग से चीनी कंपनियों का अंतर्जाल फैल रहा है और हमारे द्वारा बड़ी मात्रा में चीनी उत्पादों की खरीद कर चीन को जो आर्थिक सम्बल दिया जा रहा है, इसे देखते हुए हमें भू–राजनैतिक, आर्थिक व रणनीतिक दृष्टि से पुनर्विचार करना चाहिए।

■ **डॉ. भगवती प्रकाश शर्मा**

चीन ने विगत एक दशक में विश्व के सभी भागों में विभिन्न देशों के साथ अपने आर्थिक समझौतों व सहयोग कार्यक्रमों के माध्यम से, उनके बाजारों में अपनी पहुंच बढ़ाने के साथ–साथ अपने लिए ऊर्जा सुरक्षा व कच्चे माल की आपूर्त्ति की सुरक्षा भी सुनिश्चित की है। इन सभी उद्देश्यों की पूर्त्ति के अतिरिक्त इन देशों के साथ उसके संबंधों में उपजी प्रगाढ़ता के फलस्वरूप उसका भू–राजनीतिक वर्चस्व भी पर्याप्त रूप से बढ़ा है।

पारंपरिक रूप से विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर भारत के साथ रहने वाले कई देशों की चीन से बढ़ती निकटता के बाद वे किसके साथ रहेंगे, यह भी विचारणीय है।

वस्तुतः चीन आने वाले समय में अपने लिए रॉ मेटेरियल सिक्यूरिटी, एनर्जी सिक्यूरिटी जैसे सुरक्षा के सभी प्रमुख आयामों पर बहुत तेजी से काम कर रहा है।

अभी सऊदी अरब के साथ उसके गैस और तेल को खरीदने के लिए चीन ने 30 साल का अनुबंध किया है। अफ्रीका में एक दर्जन से अधिक ऐसे शासक हैं जहां पर स्थानीय आंदोलन बहुत होते हैं, स्थानीय आंदोलनों के विरूद्ध छोटे हथियारों की आपूर्त्ति व वहां के कुछ शासकों को व्यक्तिगत ऋण देने के बदले में अफ्रीका के लगभग एक तिहाई तेल भण्डारों सहित बहुत बड़े पैमाने पर वहां के खनिज संसाधनों को चीन ने अधिगृहीत किया है।

आने वाले 70–80 वर्षों की अपनी कच्चे माल की आपूर्त्ति व ऊर्जा सुरक्षा (रॉ मेटेरियल और एनर्जी सिक्योरिटी) उसने कर ली है। चीन का प्रभाव अफ्रीका में इस सीमा तक बढ़ा है कि कई अफ्रीकी देशों के अनेक शहरों में 'चाईना टाऊन' बनने लग गए हैं, जहां पर अब वहां के स्थानीय अफ्रीकी लोगों का भी प्रवेश निषेध है। आज अधिकांश अफ्रीकी देशों में सारे के सारे उत्पाद चीन के ही बिक रहे हैं, यूरो अमेरीकी व भारतीय उत्पाद गायब हो रहे हैं। आज अफ्रीका के लगभग एक दर्जन देशों में उनके विकास और निर्माण के सारे कार्य अब चीनी ही कर रहे हैं।

कई अफ्रीकी देश ऐसे हैं जिन्होंने यह राज्याज्ञा जारी कर रखी है कि उनके देश का 70 प्रतिशत निर्माण का काम चीनी कंपनियों को ही जाएगा। कई ऐसे अफ्रीकी देश हैं जैसे जिम्बाब्वे, इक्वेटोरियल गिनी, सूडान आदि जहां स्थानीय आंदोलनों को कुचलने के लिए चीन के द्वारा कर्ज में दिए हथियारों का खुल कर उपयोग हुआ है। इसी कर्ज के बदले में उसे अफ्रीकी संसाधनों पर स्वत्व मिल रहा है। इन सभी देशों को छोटे हथियारों की आपूर्त्ति पर संयुक्त राष्ट्र संघ ने प्रतिबंध लगा रखा है। उस प्रतिबंध की अवहेलना करते हुए वह इन शस्त्रास्त्रों की आपूर्त्ति करता रहा है।

अभी सऊदी अरब के साथ उसके गैस और तेल को खरीदने के लिए चीन ने 30 साल का अनुबंध किया है। अफ्रीका में एक दर्जन से अधिक ऐसे शासक हैं जहां पर स्थानीय आंदोलन बहुत होते हैं, स्थानीय आंदोलनों के विरूद्ध छोटे हथियारों की आपूर्त्ति व वहां के कुछ शासकों को व्यक्तिगत ऋण देने के बदले में अफ्रीका के लगभग एक तिहाई तेल भण्डारों सहित बहुत बड़े पैमाने पर वहां के खनिज संसाधनों को चीन ने अधिगृहीत किया है।

हमको ध्यान में होगा कि सूडान में 20 लाख गैर अरब मूल के किसानों पर चीनी हथियारों और चीनी सैन्य विशेषज्ञों की मदद से इतने भयावह अत्याचार हुए थे कि दक्षिणी सूडान ही अलग हो गया है। वहां साढ़े तीन लाख लोग हत्या, बलात्कार, जिन्दा जलाए जाने आदि के शिकार हुए थे। चीन के प्रभाव में इक्वेटोरियल गिनी नामक देश है वहां पर तख्ता पलट हुआ तो नए राष्ट्रपति ने स्वयं पुराने राष्ट्रपति को एक बहुत बड़े ऑडिटोरियम में एक पिंजरे से लटकाकर सार्वजनिक रूप से गोली मारी थी।

चीनी शस्त्रास्त्रों के सहयोग से जहां मानवाधिकारों का इस तरह से नृशंस हनन हो रहा है कि चीन के उत्पाद अगर पूरे विश्व में बिकें तो यह एक बहुत बड़ी विडम्बना है। हमारे देश में भी आज इंटरनेट पर संवाद करने वाले लोग बड़ी संख्या में बढ़े हैं। अगर हम चीन के सहयोग से मानवाधिकारों का जो नृशंस हनन हो रहा है, इसके विरूद्ध एक आव्हान नेट पर करें

तो चीन के सारे के सारे उत्पादों की बिक्री का बहिष्कार न केवल अपने देश में बल्कि सम्पूर्ण विश्व में संभव है। इंटरनेट का उपयोग करते हुए अपने घर बैठकर युद्ध लड़े आराम से यह किया जा सकता है। भारत में नेटीजन्स की बड़ी संख्या है।

कई अंतर्राष्ट्रीय विश्लेषकों का अनुमान है कि आने वाले 25 साल में 20 करोड़ चीनीयों को अफ्रीका में बसाने की भी चीन की अपनी वैकल्पिक योजना है। वहां पर उसने बड़ी मात्रा में संसाधनों का अधिगृहण किया है, अब वहां बड़ी संख्या में चीनी उद्योग व अन्य प्रतिष्ठान लग रहे हैं व दीर्घ परियोजनाएं चल रहीं हैं। अफ्रीका के कई देशों में 70 प्रतिशत निर्माण के प्रोजेक्ट उसके हाथ में हैं वहां चीन बड़ी मात्रा में टेक्नोक्रेट्स, कार्मिक श्रमिक व बंधुआ मजदूर ले जा रहा है। विश्लेषकों के ऐसे भी आकलन हैं कि वह अपने यहां पर जेलों में बंद कैदियों को भी ले जा रहा है। जिस कैदी की जितने वर्ष की जेल की सजा शेष है, उतना समय वह वहां अवैतनिक काम करेगा, उसके बाद उसे वहीं बसा दिया जाएगा। पूरे अफ्रीका में ऐसे 12 लाख लोगों के होने का अनुमान है।

अफ्रीकी जनता भी चीनी उत्पादों के एकाधिकार से बहुत परेशान है। चीनी उत्पादों के लिए अफ्रीकी लोग जो शब्द काम में लेते हैं वह है – जींग–जांग अर्थात जब तक चले जींग और जब खराब हो जाए जांग। वहां जिन जहाजों में चीनी माल जाता है उसे वहां पर खाली करते है और अफ्रीका के आंतरिक क्षेत्रों से जो खनिज पदार्थ लेकर ट्रक आते हैं (अर्थात् अफ्रीका के आंतरिक क्षेत्रों से वहां तांबा, सीसा आदि सभी खनिज पदार्थ लेकर आते) उसे चीनी जहाजों पर लाद दिया जाता है और चीनी साज–सामान उन ट्रकों में लद कर अफ्रीकी बाजारों में पहुंच जाता है।

कई अंतर्राष्ट्रीय विश्लेषकों का अनुमान है कि आने वाले 25 साल में 20 करोड़ चीनीयों को अफ्रीका में बसाने की भी चीन की अपनी वैकल्पिक योजना है। वहां पर उसने बड़ी मात्रा में संसाधनों का अधिगृहण किया है, अब वहां बड़ी संख्या में चीनी उद्योग व अन्य प्रतिष्ठान लग रहे हैं व दीर्घ परियोजनाएं चल रहीं हैं। अफ्रीका के कई देशों में 70 प्रतिशत निर्माण के प्रोजेक्ट उसके हाथ में हैं।

आज दुनिया का 70–80 प्रतिशत जो तांबा आदि खनिज है उनका उपयोग चीन कर रहा है। क्योंकि चीन विश्व के महानुमाप उत्पादन (मैन्यूफैक्चरिंग) के केन्द्र के रूप में उभरता जा रहा है। इसलिए विश्व में सबसे ज्यादा प्रदूषण भी चीन ही फैला रहा है। विश्व के प्रदूषकारी ग्रीन हाउस गैसों का सर्वाधिक उत्सर्जन चीन का है। ये प्रदूषकारी गैसें जिनमें विशेष हैं – कार्बनडाई आक्साईड, कार्बन मोनो आक्साईड, मिथेन, सल्फर डाइ आक्साईड, नाईट्रस आक्साईड आदि जो वायुमण्डल में, उत्सर्जित हो रही उसमें सर्वाधिक 21 प्रतिशत चीन का उत्सर्जन है। चीन इतना ज्यादा प्रदूषण फैला रहा है कि सभी पर्यावरण के प्रति संवदेनशील व्यक्ति चीनी प्रोडक्ट्स का खुशी–खुशी बहिष्कार करेंगे। चीन की प्रौद्योगिकी भी इतनी प्रदूषणकारी है कि उसके बहिष्कार का आव्हान बड़े आसानी से किया जा सकता है।

चीन ने पूरी दुनिया में उद्योगों के अधिग्रहण की ऐसी व्यापक कार्य योजना भी तैयार की है कि विश्वभर में उसका ही व्यावसायिक जाल खड़ा हो जाएगा। अपने देश में भी लिनोवो के कम्प्यूटर आजकल काफी बिकते हैं। उसी लिनोवो कंपनी ने अमरीका की सबसे बड़ी व सबसे पुरानी एवं प्रतिष्ठित कम्प्यूटर कंपनी आईबीएम का पर्सनल कम्प्यूटर डिविजन खरीद लिया है। इस तरह से चीन अमरीका व यूरोप में निरंतर कंपनियों का अधिग्रहण कर रहा है।

इसके अलावा चीन ने व्यापार के साथ ही लेटिन अमेरिकी, अफ्रीकी और एशियाई देशों के साथ करेन्सी स्वॉप के एग्रीमेन्ट भी किए है। इसके अतिरित आज यूनाईटेड अरब–अमीरात व सऊदी अरब का अधिकांश तेल भी चीन ही खरीद रहा है। इन सभी व्यापारिक प्रगाढ़ता संबंधों के कारण उनके कूटनीतिक संबंध इन सभी देशों से इतने प्रगाढ़ हो रहे हैं कि अब तक सारे अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर जहां सभी विकासशील देश भारत के साथ मतदान करते रहें हैं अब आने वाले समय में हमारे लिए एक चुनौती होगी। पारंपरिक रूप से हमारे मित्र देशों का जो समूह था, उनमें से बड़ी संख्या में देश चीन के निकट होते जा रहे हैं। इस प्रकार हमारे कूटनीतिक संबंधों की दृष्टि से भी चीन चिंता बढ़ा सकता है।

निष्कर्ष रूप में पाकिस्तान, चीन के हाथों में खेलने वाले देशों में से एक है। बांग्लादेश की भी लगभग यही स्थिति बन रही है। नेपाल में भी यह स्थिति बन ही गयी है और श्रीलंका पर भी उसका प्रभाव बढ़ा है।

इस प्रकार भारत के चारों ओर देशों से संरक्षक व सुरक्षित जैसे संबंध बना कर चीन भारत की घेराबन्दी कर रहा है। साथ ही देश के अंदर जिस ढंग से चीनी कंपनियों का अंतर्जाल फैल रहा है और हमारे द्वारा बड़ी मात्रा में चीनी उत्पादों की खरीद कर चीन को जो आर्थिक सम्बल दिया जा रहा है, इसे देखते हुए हमें भू–राजनैतिक, आर्थिक व रणनीतिक दृष्टि से पुनर्विचार करना चाहिए। ❑

रपट

जम्मू-कश्मीर पर वार्ताकारों का प्रतिवेदन

पाकिस्तानी आई.एस.आई. के प्रभाव में काम कर रहे, वार्ताकारों के समूह के असंवैधानिक, संसद की अवमाननाकारी और देश की एकता व अखण्डता को चुनौती देने वाले प्रतिवेदन को केन्द्र सरकार द्वारा जारी किया जाना अनुचित व राष्ट्रविरोधी

केन्द्र सरकार द्वारा सात माह से पड़े, जम्मू–कश्मीर पर 2010 में नियुक्त 3 वार्ताकारों के समूह के, प्रतिवेदन को बिना किसी नवीन सन्दर्भ या प्रसंग के अचानक 24 मई को जारी कर देना सर्वथा अनपेक्षित था। जम्मू–कश्मीर पर संसद के सर्वसम्मत प्रस्ताव के विरूद्ध एक राष्ट्र विरोधी प्रस्ताव को केन्द्र सरकार द्वारा जारी कर उसे शासकीय सम्बल देना सर्वथा अनुचित है। जम्मू–कश्मीर को 1952 से पूर्व की स्थिति में लाने वाला यह प्रस्ताव जिसमें जम्मू–कश्मीर में समानान्तर राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री जैसे पदों का प्रावधान कर जम्मू कश्मीर को भारतीय संविधान के प्रावधानों और संसद अधिनियमों की परिधि से बाहर रखने वाली ये सभी अनुशंसाएं सर्वथा राष्ट्र विरोधी हैं।

आज जब देश के सुरक्षा बलों ने अत्यन्त बहादुरी पूर्वक, जम्मू–कश्मीर में 25 वर्ष से व्याप्त अलगाववादी व जेहादी हिंसा को पूरी तरह से समाप्त करने में प्रशंसनीय सफलता अर्जित की है। इस सफलता को अर्जित करने में, उन्हें न केवल देश–विदेश के असंख्य दुर्दान्त मरजीवड़ों सहित, अनेक अलगाववादी जेहादी संगठनों से सशस्त्र संघर्ष करना पड़ा है, वरन् मानवाधिकारों के नाम पर इन अलगाववादियों से गठजोड़ रखने वाले कई संगठनों विदेशी धन से पोषित व राष्ट्र विरोधी तत्वों द्वारा मानवाधिकार के नाम पर चलाये जाने वाले मुकदमों की अग्नि परीक्षा से भी निकलना पड़ा है। इन सारी बाधाओं के उपरान्त भी जहाँ कभी आतंकवादी हिंसा में मरने वालों की संख्या 5236 के चरम पर थी वहीं आज जम्मू–कश्मीर में आतंकी वारदातें नगण्य सी हो गयी हैं। दूसरी ओर बाहरी मोर्चे पर भी भारत के राजनायिक व अन्तर्राष्ट्रीय दबाव में पाकिस्तान भी, जम्मू–कश्मीर मे अलगाववादी आन्दोलन को बल देने का साहस एक बार तो छोड़ चुका है।

ऐसी स्थिति में जम्मू–कश्मीर की स्थिति को 1952 से भी पहले की स्थिति में ले जाने जैसी सर्वथा राष्ट्र विरोधी सिफारिशों को केन्द्र सरकार ने स्वयं जारी कर, अलगाववादियों व पाकिस्तान को नयी ऊर्जा देने का विफल प्रयत्न आरंभ कर दिया है। जम्मू–कश्मीर को अलगाव की दिशा में ले जाने वाले पाकिस्तानी आई.एस. आई. के प्रभाव वाले वार्ताकारों के समूह के प्रतिवेदन को शासकीय प्राधिकार से जारी करना सर्वथा राष्ट्र विरोधी कार्य है।

सर्वाधिक आश्चर्य की बात तो यह है कि इन वार्ताकारों के समूह ने सात माह पूर्व 12 अक्तूबर 2011 को ही प्रतिवेदन सरकार को सुपुर्द कर दिया था। इन सात महीनों में जब जम्मू–कश्मीर पूरी तरह शान्त था। कहीं कोई ऐसा प्रसंग भी नहीं उपजा कि अचानक उस प्रतिवेदन को जारी किया जाये। ऐसे में इस अलगाववादी व राष्ट्र विरोधी प्रतिवेदन को सरकार द्वारा जारी करने की इस कुचेष्टा के पीछे क्या प्रेरणा रही है यह एक गम्भीर रहस्य है। देश के अन्दर व बाहर कार्यरत किन राष्ट्र विरोधी षड़यंत्रकर्त्ताओं का इसके पीछे हाथ है? कई प्रेक्षकों व विश्लेषकों का यह भी मत है कि आर्थिक दृष्टि से यू.पी.ए. सरकार की घोर विफलता, रूपये में गिरावट, पेट्रोलियम व अन्य पदार्थों के मूल्य में वृद्धि रोकने में विफलता, विश्व भर मे देश की अर्थव्यवस्था की साख में गिरावट आदि से विपक्ष व समाज का ध्यान बँटाने के लिये सरकार ने इस प्रतिवेदन को जारी किया होगा। यदि ऐसा है तो सरकार की तात्कालिक विफलता को ढकने के लिये देश के दुश्मनों व अलगाववादियों को देश की एकता व अखण्डता को चुनौती देने वाले तर्कों को शासकीय आवरण देने की कुचेश्टा अत्यन्त गम्भीर है।

वार्ताकारों का प्रतिवेदनः वार्ताकार समूह के प्रतिवेदन की प्रतिगामी, राष्ट्रविरोधी और देश की एकता व अखण्डता को चुनौती देने वाली प्रमुख अलगावकारी अनुशंसायें अग्रलिखित हैः–

1. वार्ताकार समूह ने सुझाया है कि, जम्मू–कश्मीर पर, 1952 के दिल्ली समझौते के बाद लागू किये सभी केन्द्रीय अधिनियमों व भारतीय संविधान के प्रावधानों की समीक्षा की जाये। इस प्रकार की समीक्षा हेतु एक संवैधानिक समिति का गठन किया जाये जो 1952 के दिल्ली समझौते के बाद जम्मू–क मीर पर लागू किये गये उन सभी केन्द्रीय अधिनियमों व संविधान के प्रावधानों की समीक्षा करे, जिनसे जम्मू–कश्मीर के विशेष दर्जे पर आघात हुआ है और राज्य सरकार के अधिकारों का ह्रास हुआ या उनमें कमी आयी है।
2. संसद के अधिकारों में भी कटौति

सुझाव देते हुये, वार्ताकारों ने कहा है कि संसद, भविष्य में देश की सुरक्षा (आंतरिक व बाह्य) एवं आर्थिक महत्व के मुद्दों को छोड़कर जम्मू–कश्मीर के लिये कोई अधिनियम नहीं बनायें। इसका अर्थ है देश की संसद में बने कानून जम्मू–कश्मीर प्रदेश पर लागू नहीं हो। क्या लोकतंत्र में देश की संसद की अधिकारों में कटौति का ऐसा कोई सुझाव मान्य हो सकता है।

3. वार्ताकारों ने यह भी अनुशंसा की है कि देश के कोई केन्द्रीय कानून व संविधान के प्रावधानों को राष्ट्रपति के आदेश के माध्यम से भी जम्मू–कश्मीर पर लागू नहीं किया जाये।

4. वार्ताकार समूह ने यह भी सुझाया है कि संविधान में धारा 370 के आगे प्रयुक्त अस्थायी शब्दों को हटा कर उसे स्थायी बनाते हुये जम्मू–कश्मीर के विशेष दर्जे वाले प्रावधान स्थायी किये जायें। ऐसा करने से भविष्य में भी कभी देश का कोई नागरिक जम्मू–कश्मीर में नहीं बस सकेगा और अन्य भी कई बाधायें स्थायी हो जाएंगी।

5. वार्ताकार समूह की यह अनुशंसा की चिन्ताजनक है कि, जम्मू–कश्मीर प्रदेश के राज्यपाल व मुख्यमंत्री पदों के अंग्रेजी नामकरण गवर्नर व चीफ मिनिस्टर चाहे चलते रहें पर उन्हें उर्दू में क्रमशः राष्ट्रपति व प्रधानमंत्री के समानार्थक शब्दों 'सदर ए रियासत' जिसका अर्थ है राष्ट्राध्यक्ष या राष्ट्रपति व 'वजीर ए आजम' जिसका अर्थ है प्रधानमंत्री ही प्रयोग किये जायें। अर्थात् लोक व्यवहार व शासकीय व्यवहार में देश में पुनः दो प्रधानमंत्री व दो राष्ट्रपति जैसी स्थिति उत्पन्न हो जायेगी।

6. वार्ताकारों के समूह ने यह भी सुझाया है कि भविष्य में जम्मू–कश्मीर प्रदेश पर केन्द्र सरकार अपना राज्यपाल आरोपित नहीं करें। प्रदेश सरकार वहाँ विपक्ष के साथ विचार विमर्श पूर्वक तीन नाम सुझाये उनमें से देश का राष्ट्रपति जम्मू–कश्मीर में 'सदर ए रियासत' अर्थात् राष्ट्रपति तुल्य गवर्नर की नियुक्ति करें।

7. वार्ताकारों ने जहाँ केन्द्र सरकार को सुझाया है कि वह अलगाववादी संगठन हुरियत से अनवरत समझौता वार्त्ता जारी रखे और जम्मू–कश्मीर की उलझन का हल भारत पाक वार्ता पर अवलम्बित नहीं करते हुये भी सभी पक्षकार जब सहमत हो तो अन्तिम समझौता करते समय पाकिस्तान के लिये भी द्वार खुले रखे जा सकते हैं। आज तक हम सतत् यही कहते व मानते रहे हैं कि जम्मू–कश्मीर भारत का आंतरिक मामला है ऐसे में जम्मू–कश्मीर में कानून व व्यवस्था के मामले में हम पाकिस्तान को पक्षकार बनाये यह अनुशंसा भी, अव्यावहारिक, अत्यन्त गंभीर व निन्दनीय है।

8. ''जम्मू–कश्मीर भारत का अभिन्न अंग है'', संसद, इस आशय का सर्व सम्मत प्रस्ताव पारित कर चुकी है तथा पाकिस्तान के अवैध कब्जे वाले जम्मू–कश्मीर के क्षेत्र को हम पाक अधिकृत कश्मीर Pak occupied Kashmir (POK) कहते आये हैं। ऐसे में वार्ताकारों ने षड़यंत्रकारी दुर्मंशा से जम्मू–कश्मीर के उस भाग के लिये Pak Administered Kashmir (PAK) अर्थात् 'पाक प्रशासित कश्मीर' शब्द प्रयोग करके पाकिस्तान के अवैध अधिग्रहण को वैधता का मिथ्या आवरण देने की दुश्चेष्टा की है।

9. इसके अतिरिक्त जम्मू कश्मीर प्रांत में नियंत्रण रेखा को अप्रासंगिक बताते हुये पाक अधिकृत कश्मीर के बीच मुक्त व्यवहार, आतंकवादियों को माफी, पाकिस्तान के लिये भाड़े पर पत्थरबाजी करने वालों को जेलों से छोड़ना, सुरक्षा बलों में कटौति, सशस्त्र बल विशेषाधिकार अधिनियम की समीक्षा आदि सभी ऐसी अनुशंसायें हैं, जिनसे जम्मू–कश्मीर की स्थिति पुनः नियंत्रण से परे हो सकती हैं।

यह अत्यन्त हास्यास्पद है कि बिना किसी वैध व संवैधानिक अधिकार के ऐसे कोई शासकीय आदेश से नियुक्त वार्ताकार देश की संसद के अधिकारों को सीमित कर संविधान के प्रावधानों को वापस लेने की अनुशंसा कर सकते हैं और क्या सरकार को ऐसी सिफारिशों को स्वयं जारी कर उन्हें शासकीय आवरण प्रदान करने की दुश्चेष्टा करनी चाहिये।

वस्तुतः 13 अक्तूबर 2010 को सरकार द्वारा नियुक्त 3 वार्त्ताकारों के इस समूह में से दिलीप पड़गावकर व राधा कुमार के तो पहले से ही आई.एस.आई. के प्रभाव में होने के आरोप लगते रहे हैं। इस समूह के तीसरे सदस्य एम.एम. अंसारी तक स्वयं ऐसा आरोप लगा चुके हैं। वर्ष 2010 में भी जब आतंकवाद को सुरक्षा बलों द्वारा निर्मूल कर देने पर पाकिस्तान केवल कुछ लड़कों को भाड़े पर नियुक्त कर यहाँ–वहाँ पत्थरबाजी करा पाने भर की स्थिति में रह गया था। इसे सामान्य कानून व व्यवस्था की समस्या के रूप में निपटाया जा सकता था। उस समय में ऐसे किसी वार्ताकार समूह की नियुक्ति भी अप्रांसगिक थी और अब इनकी राष्ट्र विरोधी सिफारिशों को, उनके प्रतिवेदन प्रस्तुति के सात माह बाद बिना किसी प्रसंग के सरकार द्वारा जारी करना और भी अधिक आश्चर्यजनक व चिन्ताकारी है। सरकार को इसे वापस लेकर निरस्त करना ही देश हित में है।

– प्रस्तुति भगवती प्रकाश शर्मा

नॉवरेतिस दवा कम्पनी के खिलाफ प्रदर्शन एवं पुतला दहन

धरने में विभिन्न वक्ताओं ने नॉवरेतिस कंपनी द्वारा भारत सरकार पर किए गए पेटेंट संबंधी मुकद्दमे के कारण देश की जन स्वास्थ्य एवं देश के दवा उद्योग पर संभावित खतरों के संबंध में अपने विचार प्रकट किए। अंत में कार्यकर्ताओं ने नॉवरेतिस कंपनी के पुतले को आग लगा कर अपना रोष प्रकट किया।

दिनांक 10 जुलाई, 2012 को नॉवरेतिस दवा कम्पनी द्वारा ग्लीवैक नामक कैंसर दवा के लिए पेटेंट हेतु भारत सरकार के विरुद्ध मुकद्दमें के विरोध में और देश के जनस्वास्थ की रक्षा हेतु स्वदेशी जागरण मंच दिल्ली के कार्यकताओं ने विशाल धरना एवं प्रदर्शन का आयोजन किया।

गौरतलब है कि स्विटजरलैंड की एक दवा कंपनी नॉवरेतिस और भारत सरकार के बीच सुप्रीम कोर्ट में एक मुकद्दमा चल रहा है। भारत सरकार ने नॉवरेतिस कंपनी की एक दवा 'ग्लीवैक' (लवण नाम इमेटीनिब) के लिए पेटेंट प्रदान करने से मना कर दिया था।

नॉवरेतिस कंपनी ने पहली बार वर्ष 2006 में भारत सरकार के खिलाफ इस संबंध में मद्रास हाई कोर्ट में मुकद्दमा दायर किया था, जिसमें यह कंपनी हार गई थी। अब यह मुकद्दमा सुप्रीम कोर्ट में लंबित है, जिसकी सुनवाई 10 जुलाई 2012 से प्रारंभ होने जा रही थी। लेकिन अब यह सुनवाई 16 अगस्त 2012 तक टाल दी गई है।

भारत में कई अन्य कंपनियाँ 'इमेटीनिब' नामक इस दवा को बनाती हैं। यह दवा ब्लड कैंसर के मरीजों के लिए अत्यधिक कारगर दवा है। ऐसा माना जाता है कि देश में हर वर्ष ब्लड कैंसर के 20 हजार नये मरीज बनते हैं। नॉवरेतिस कंपनी अपनी बनाई गई इस दवा के लिए लगभग 1 लाख 20 हजार रुपये प्रतिमाह वसूलती है। जबकि यही दवा भारतीय कंपनियों द्वारा मात्र 10 हजार रुपये प्रतिमाह की कीमत पर बेची जाती है। यदि इस दवा के उत्पादन पर किसी एक कंपनी का एकाधिकार हो जायेगा तो गरीब मरीजों द्वारा दवा नहीं खरीद सकने के कारण उन्हें मौत की नींद सोना पड़ सकता है।

यह मुकद्दमा मात्र 'ग्लीवैक/इमैटिनिव'' के पेंटेंट अधिकार का नहीं है। यदि नॉवरेतिस कंपनी भारत सरकार से यह मुकद्दमा जीत जाती है तो नॉवरेतिस ही नहीं बल्कि सभी भारतीय और विदेशी कंपनियों के पास यह अधिकार आ जायेगा कि अपने पुरानी दवाओं के नये गुणों के नाम पर उसे नई दवा के नाते पेटेंट युक्त करा लें।

धरने एवं प्रदर्शन और पुतला दहन के विशाल कार्यक्रम में दिल्ली के कोने–कोने से लगभग 500 प्रदर्शनकारी शामिल हुए। कार्यक्रम को श्री सुरेश के. चौहान (प्रबंध निदेशक, सुदर्शन टीवी), डा. अश्विनी महाजन (अखिल भारतीय विचार मंडल प्रमुख), श्री प्रदीप शर्मा (क्षेत्रीय सहसंयोजक), श्री जितेन्द्र महाजन, श्रीमती उमा गंगवार, श्री गोविन्दराम अग्रवाल (प्रांत संयोजक दिल्ली), श्री सुशील पांचाल (सह प्रांत संयोजक, दिल्ली), श्री शैलेन्द्र शैंगर (प्रांतीय विचार मंडल प्रमुख), श्री नीरज शर्मा, श्री मनोज गुप्ता, श्री दीपक त्यागी, श्री रंजीत कश्यप, श्री प्रवीण आर्य आदि ने संबोधित किया।

धरने में विभिन्न वक्ताओं ने नॉवरेतिस कंपनी द्वारा भारत सरकार पर किए गए पेटेंट संबंधी मुकद्दमे के कारण देश की जन स्वास्थ्य एवं देश के दवा उद्योग पर संभावित खतरों के संबंध में अपने विचार प्रकट किए। अंत में कार्यकर्ताओं ने नॉवरेतिस कंपनी के पुतले को आग लगा कर अपना रोष प्रकट किया। साथ ही नॉवरेतिस दवा कंपनी को चेतावनी देते है कि वह भारत के जन स्वास्थ्य पर पड़ने वाले संभावित दुष्प्रभावों के मद्देनजर अपने मुकद्दमे को तुरंत वापिस लें।

देश के जनस्वास्थ्य के लिए उभरते खतरों के मद्देनजर स्वदेशी जागरण मंच सरकार से मांग करता है कि –

1. नॉवरेतिस कम्पनी द्वारा सुप्रीम कोर्ट में किये गए मुकद्दमें की पैरवी हेतु देश के एटॉरनी जनरल को भेजें ताकि मुकद्दमे की प्रभावी पैरवी हो सकें।
2. भारतीय दवा कंपनियों के विदेशी कंपनियों द्वारा अधिग्रहण पर तुरंत प्रभावी रोक लगाई जाए। ❑